मइ : १९८७
विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाँटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगाँव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी - दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा – कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी —नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम बिलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद —देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दया शंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गडोडिया—अपर बाजार (राँची)
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगाँव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील —भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. दस दोहे—	डॉ० केदारनाथ लाभ	२
३. आवत एहि सर नहिं कठिनाई	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. साहित्य प्रसंग	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज	७
५. बुद्ध का अद्भुत् मस्तिष्क	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१०
६ अखण्ड आनन्द का देश : उत्तराखण्ड का दिव्य परिवेश (२)	मुसाफिर	१५
७. रामकृष्ण विवेकानन्द भावआन्दोलन का राष्ट्र निर्माण में योग दान (२)	डॉ० शैल पाण्डेय	१९
८. बुद्धि योग	स्वामी वेदान्तानन्द	२३
९. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२६
१०. भगवान बुद्ध	स्वामी विवेकानन्द	३०
११. भगवान बुद्ध के उपदेश		३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ मई—१९८७ अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मकान बाँधते समय चारों ओर मचान बनाना अनिवार्य होता है, परन्तु मकान का काम पूरा होते ही मचान की कोई जरूरत नहीं रह जाती। इसी तरह साधक के लिए प्रथम अवस्था में मूर्ति पूजा की आवश्यकता होती है, बाद में नहीं रह जाती।

(२)

गाय का दूध वास्तव में उसके समूचे शरीर में व्याप्त है, पर उसके कान या सींगों को दबाने से तुम्हें दूध नहीं मिलेगा, दूध के लिए तो थनों को ही निचोड़ना होगा। इसी भाँति, ईश्वर तो पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं पर तुम उन्हें हर जगह नहीं देख पाओगे। पावन तीर्थों और मन्दिरों में, जहाँ युग-युग के साधक-भक्तों के साधन-भजन, पूजा-उपासना आदि के फलस्वरूप भक्ति-भाव घनीभूत रूप में ओत-प्रोत है, भगवान का विशेष प्रकाश विद्यमान है।

(३)

साधुसंग मानो चावल का धोया हुआ जल है। किसी को अत्यधिक नशा चढ़ा हो तो उसे चावल का धोया हुआ पानी पिला देने से नशा उतर जाता है। इसी प्रकार साधुसंग संसार में कामना-वासनारूपी मद पीकर जो मत्त हुए हैं उनका नशा उतार देता है।

(४)

जैसे काँच में यदि पारा लगा हुआ हो तो उसमें चेहरा दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा वीर्य धारण करने से ब्रह्मदर्शन हो सकता है।

दस दोहे

—डॉ० केदारनाथ लाभ

चल मेरे मन-विहग तू, रामकृष्ण के देश।
शोक ताप संताप भय, जहाँ न किंचित् क्लेश ॥१॥

हर नर है संसार में, रामकृष्ण का रूप।
हर नारी माँ सारदा, पावन परम अनूप ॥२॥

सब को सुख उपभोग के, साधन मिले अनेक।
मेरे तो करुणायतन, रामकृष्ण हैं एक ॥३॥

पापी कहकर तू नहीं, कर अपना अपमान।
भूल विगत को कर सतत, रामकृष्ण का ध्यान ॥४॥

शुभ चिंतन शुभकर वचन, शुभ आचरण उदार।
भद्र दृष्टि शुभ श्रवण हो, शुभ जीवन अविकार ॥५॥

मन्दिर में शिव देखता, बाहर केवल जीव।
उस नर को है क्या पता, शिव ही हैं ये जीव ॥६॥

भला, हुआ क्या ! की अगर, तू ने थोड़ी भूल ?
रामकृष्ण कह पोंछ ले, मन-दर्पण की धूल ॥७॥

सुनें, श्रवण यदि हो जिन्हें, देखें यदि हो दृष्टि।
रामकृष्ण युग-देव हैं, रामकृष्णमय सृष्टि ॥८॥

दक्षिणेश्वरेश्वर सुनो, यह विनम्र अनुरोध।
दो विवेक विश्वास नित, हरो काम भय क्रोध ॥९॥

बेलुड़ मठ के देवता, पकड़ो मेरा हाथ।
संग साथ छूटे नहीं, मैं हूँ अबल अनाथ ॥१०॥

❀

सम्पादकीय सम्बोधन

आवत एहिं सर 'नहिं' कठिनाई

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने रामचरित मानस की एक बड़ी ही ललित भूमिका प्रस्तुत की है। उन्होंने इसे एक सुन्दर रूपक में बाँधा है। इसे मानस रूपक कहते हैं। उन्होंने रामचरित मानस को एक पवित्र और सुन्दर सरोवर कहा है। इसमें प्रस्तुत भुशुण्डि-गरुड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा स्वयं तुलसी दास और संतों के संवाद को इस सरोवर के चार घाट माने हैं। श्रीराम और श्रीसीता का यश इसमें अमृत-जल के रूप में है। संतों की सभा इस सरोवर के चारों ओर लगे उपवन हैं। विविध प्रसंगों की कथाएँ इसमें तोते, कोयल आदि पक्षियों के समान हैं। आदि आदि। किन्तु, उनका कथन है कि इस सरोवर में सभी नहीं आ सकते। सभी आ पाते ही नहीं। उनका कथन है—

> अति खल जे विषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहि अभागा॥
> संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
> तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥

अर्थात् परम दुष्ट और विषयी लोग अभागे बगुले और कौए के समान हैं। वे सरोवर के निकट नहीं जा पाते। कारण यह है कि इस मानस रूपी सरोवर में घोंघे, मेढ़क और सेवार के समान विषय वासनाओं के रस से भरपूर अनेक कथाएँ नहीं हैं। कौओं और बगुलों के समान विषय-वासनाओं से ग्रस्त ये लोग यहाँ आने में समर्थ नहीं हो पाते।

तुलसी दास जी आगे कहते हैं—

> आवत एहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥ (१-३८-२-३)

अर्थात् ये विषयी लोग यहाँ इसलिए नहीं आ सकते क्योंकि इस सरोवर तक आने में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। अगर स्वयं भगवान श्रीरामचन्द्र की कृपा न हो तो यहाँ आ पाना संभव नहीं है।

गोस्वामीजी ने ठीक ही कहा है। कहाँ परम पावन भगवान श्रीरामचन्द्र जी के जीवन चरित्र का मान सरोवर और कहाँ विषय-वासनाओं के भोग में आकंठ डूबे बगुलों और कौओं के समान पापी लोग। भला वे इस सरोवर तक जा ही कैसे सकते हैं? वे तो कुसंग के कुमार्ग पर चलनेवाले हैं। घर-गृहस्थी के जंजाल उनके सामने विशाल पर्वत के समान खड़े हैं। ऐसे लोग यदि इस सरोवर की ओर जाने की चेष्टा भी करते हैं तो वहाँ जाते ही उन्हें नींद धर दबोचती है। मूर्खता का जाड़ा सताने लगता है और वे वहाँ जाकर भी उसमें स्नान नहीं कर पाते। अभिमान पूर्वक लौट आते हैं।

गृह कारज नाना जंजाला । ते अति दुर्गम सैल बिसाला । × × ×
जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहि नींद जुड़ाई होई ।।
जड़ता जाड़ बिषय उर लागा । गएहुँ न मज्जन पाव अभागा ।।
करि न जाइ सर पर मज्जन पाना । फिरि आवइ समेत अभिमाना ।।

पापियों, विषय-रस भोगियों की कैसी भयंकर तस्वीर खींची है तुलसीदास जी ने ! मैं जब इन पंक्तियों को पढ़ता हूँ, डर जाता हूँ। मन व्यथा से भर जाता है। आँखें छलक पड़ती हैं। आह ! यह संसार तो विषय-वासना से ग्रस्त लोगों से भरा पड़ा है। ये कभी प्रभु की जीवन-गाथा की गंगा में डुबकी लगा नहीं सकते ! उस परम पावन शीतल ब्रह्म-वारि में अवगाहन नहीं कर सकते ! कैसे होगा इनका कल्याण !

तुलसीदास जी ने इन विषयानन्दी लोगों के लिए दो रास्ते बताये हैं— प्रथम राम की कृपा और दूसरा सत्संग।

सकल बिघ्न व्यापहि नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहि जेही ।।
जो नहाई चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई ।।

बातें सही हैं। ईश्वर-कृपा के बिना विषयासक्त जनों का दूसरा सहारा क्या है ? विद्यापति ने इसी से कहा है—'तोहें जग तारन दीन दयामय, एतय तोहर विस्वासा।' प्रभो, तुम संसार के उद्धारक हो, दीनों पर दया करने वाले हो, यही मात्र भरोसा है। और ईश्वर की कृपा के लिए सत्संग आवश्यक है। किन्तु प्रश्न यह है कि जिन संसारियों का मन, विषयासक्तों का मन प्रभु के चरित-सरोवर में स्नान करने की ओर उन्मुख नहीं होता, वह सत्संग की ओर कैसे उन्मुख होगा ? प्रभु-चरित्र सुनने में जिसे रस नहीं मिलता, उसे सत्संग में रस कैसे प्राप्त होगा ? और यदि उसे सत्संग में रस प्राप्त नहीं हो, तो क्या उसके लिए कोई चारा नहीं ?

इसी समय मेरा ध्यान श्रीरामकृष्ण की ओर जाता है। श्रीरामकृष्ण, सच पूछिए तो ऐसे ही लोगों के लिए आये थे। यदि ऐसे विषयासक्त लोगों के, ऐसे पापियों के, ऐसे संसारियों के वे आश्रय नहीं बन सकते, शरण-स्थल नहीं बन सकते, तो फिर उनके अवतरण का वर्तमान युग में कोई प्रयोजन हो नहीं सकता। श्रीरामकृष्ण की जीवन-जाह्नवी में साधु-असाधु, सज्जन-दुर्जन, संत-असंत, पंडित-मूर्ख सभी समान भाव से, सहज भाव से अवगाहन कर सकते हैं, करते हैं, और कर चुके हैं। जो भी उनकी शरण में गया, वही उनकी कृपा के अमृत-सरोवर में स्नानकर परितृप्त हो गया, धन्य हो गया। कोई उस सुरसर से खाली हाथ नहीं लौटा। चाहे वह थियेटर में काम करनेवाली और अपावन जीवन जीनेवाली नर्तकी विनोदनी हो, भ्रष्टता और भक्ति के बीच पेंगे मरनेवाले मद्यप गिरीश हों, आत्महत्या करने पर उतारू, अपने जीवन से हताश-निराश श्री 'म' (श्रीरामकृष्ण वचनामृत के प्रसिद्ध लेखक) हों, ईश्वर के अस्तित्व की खोज में बेचैन नास्तिक नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) हों या निरक्षर रकटूराम (लाटू महाराज; स्वामी अदभुतानन्द), सांसारिकता में आकण्ठ डूबे जमींदार मथुर विश्वास हों या अछूत जमादार रसिक (मेहतर), सब उनके पास बिना किसी पूर्व-साधना या सत्संग के ही पहुँचे थे। और

सबने उनके जीवन के ब्रह्मवारि में स्नान कर सुशीतलता पायी थी—आत्मिक तृप्ति पायी थी चैतन्य लाभ किया था।

यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण ने अपने लीला-संवरण के कुछ ही माह पूर्व, १ जनवरी १८८६ ई० को, जो भी सामने आया सबकी चिर आकांक्षित लालसाएँ कल्पवृक्ष के समान पूरी कीं। सब को चैतन्य प्रदान किया। और उनके लीला-संवरण के ठीक १० वें वर्ष दक्षिणेश्वर में जब श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया गया तो उसमें भाग लेने औरों के साथ-साथ बहुत सी वेश्याएँ भी आयी थीं। इसकी सूचना मिलने पर स्वामीजी ने २३ अगस्त १८८६ को स्वामी रामकृष्णानन्दजी को जो पत्र लिखा था, वह मननीय है। उन्होंने लिखा –

"आज रामदयालु बाबू का पत्र मुझे मिला जिसमें वे लिखते हैं कि दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के वार्षिकोत्सव के दिन बहुत सी वेश्याएँ वहाँ आयी थीं; इसलिए बहुत से लोगों को वहाँ जाने की इच्छा कम हो गयी है। इसके अतिरिक्त उनके विचार से पुरुषों के जाने के लिए एक दिन नियुक्त होना चाहिए और स्त्रियों के लिए दूसरा। इस विषय पर मेरा निर्णय यह है—

१. यदि वेश्याओं को दक्षिणेश्वर जैसे महान तीर्थों में आने जाने की आज्ञा नहीं होगी तब वे और कहाँ जा सकेंगी। ईश्वर पापियों के लिए विशेषतः प्रकट होते हैं, पुण्यवानों के लिए कम।

२. लिंग, जाति, धन और विद्या के भेद और इनके समान और भी बहुत से भेद हैं जो कि साक्षात् नरक के द्वार हैं, उन्हें संसार में ही सीमाबद्ध रहने दो।…………

३ यह अपनी एक विशाल जगन्नाथपुरी है जहाँ जिन्होंने पाप किये हैं और जिन्होंने नहीं किये हैं, महात्मा और दुरात्मा—पुरुष, स्त्री और बालक—बिना किसी उम्र अथवा अवस्था के भेद-भाव के—सबको समान अधिकार है।………

४. जो मन्दिर में भी यह सोचते हैं कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच-जाति का है, एक तीसरा दरिद्र है, तथा कोई और साधारण जनता में से है—ऐसे लोगों की संख्या (जिन्हें तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो उतना अच्छा। क्या जो लोग भक्तों की जाति, लिंग, या जीवन का व्यवसाय देखते हैं वे हमारे प्रभु के गुण ग्रहण कर सकेंगे ? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैकड़ों वेश्याएँ आयें और उनके चरणों में अपना सिर नवायें, और यदि एक भी सज्जन न आये तो कोई हानि नहीं। आओ वेश्याओ, आओ शराबियो, आओ चोरो, सब आओ, श्री प्रभु का द्वार सबके लिए खुला है।"

(पत्रावली भाग २ पृ. २३-२४)

स्वामी जी के उपर्युक्त करुणापूर्ण वचन में यह आश्वासन छिपा है कि ईश्वर के सरोवर में हर कोई आ सकता है, बिना किसी पूर्व तैयारी के। हम जब मंदिर में जाते हैं तो निश्चय ही स्नान आदि कर पवित्र होकर जाते हैं। किन्तु गंगा में प्रवेश करने के लिए कुछ सोचना नहीं पड़ता। कोई तैयारी नहीं करनी पड़ती। हम जैसे हैं वैसे ही, मैले-कुचैले, गंदगी से भरे, उसमें प्रवेश कर जाते हैं। गंगा में नहाने के लिए पहले से नहाने की जरूरत नहीं होती। इसलिए मंदिर और हममें एक दूरी होती है।

गंगा और हममें कोई दूरी नहीं होती। श्रीरामकृष्ण ब्रह्म-वारि हैं। उनका जीवन गंगा के समान है। वे स्वयं अमृत के मानसरोवर हैं। और इसलिए मैं "आवत एहिं सर अति कठिनाई" की जगह कहना चाहता हूँ—

आवत एहिं सर 'नहिं' कठिनाई। करहु पान जल, लेहु नहाई॥

आओ, तुम सब आओ। अपने पाप-पुण्य का विचार किये बिना, अपनी साधना आदि का चिंतन किये बिना, श्रीरामकृष्ण की जीवन-गाथा की गंगा में, श्रीरामकृष्ण के वचनामृत में बे-हिचक आओ। इस अमृत का छक कर पान करो, इसमें सारा जीवन अवगाहन करते रहो। यह गंगा तुम्हारे लिए ही ब्रह्म-कमंडलु से इस धरती पर उतरी है, तुम्हारा ही पाप-ताप हरने के लिए अवतरित हुई है।

इसके लिए आपको करना कुछ नहीं है। बस केवल श्रीरामकृष्ण को अपना मान लेना है, अपना बना लेना है। तभी तो उन पर जोर चल सकेगा। तभी तो हम कह सकेंगे, हम जैसे हैं तुम्हारे हैं। तुम्हारे समीप बिना किसी पूर्व तैयारी के आये हैं। लगाने दो मुझे डुबकी जी भर अपनी शांतिदायिनी अमृत धारा में। स्वयं श्रीरामकृष्ण का वचन है—

'ईश्वर को अपने से भी अपना बना लेना होगा, तभी तो होगा। जैसे बदचलन औरत जब पहले-पहल पराए पुरुष से प्रेम करने लगती है तब कितना लुकाती-छिपाती है, कितना डरती-सहमती और लजाती है; पर जब प्रीत बढ़ उठती है तब यह सब कुछ नहीं रह जाता। तब सीधे उसका हाथ पकड़कर सबके सामने कुल छोड़कर बाहर आ खड़ी होती है। फिर यदि वह आदमी उसकी भलीभाँति देखभाल न करे, या उसे छोड़ देना चाहे, तो वह उसका गला पकड़कर खींचते हुए कहती है, 'तेरे लिए मैं घरबार छोड़कर रास्ते पर आ खड़ी हुई, अब तू मुझे खाने को रोटी देगा या नहीं, बोल।' इसी प्रकार जिसने भगवान के लिए सब कुछ छोड़ दिया है, उनको अपना बना लिया है, वह उन पर जोर लगाकर कह सकता है, "तेरे लिए मैंने सब कुछ छोड़ा, अब मुझे दर्शन देगा कि नहीं बोल।"

आप कहेंगे, सब कुछ छोड़ना क्या आसान है? बिलकुल आसान है। छोड़ना कुछ नहीं है। आप घर में रहें, वन में रहें। जहाँ हैं, जैसे हैं, वैसे रहें। केवल भीतर से डर हटाकर प्रभु की ओर चल दें। विश्वास करें—

आवत एहिं सर नहिं कठिनाई। करहु पान जल लेहु नहाई॥

जय श्रीरामकृष्ण! जय माँ सारदे! जय स्वामीजी।

साहित्य-प्रसंग

—श्रीमत्स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
सहाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन

[उद्बोधन कार्यालय में १ मार्च १९८६ को रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य सम्मेलन में रामकृष्ण और रामकृष्ण मिशन के सहाध्यक्ष पूज्य श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज द्वारा प्रदत्त एवं उद्बोधन के आश्विन १३९३ की शारदीया संख्या में प्रकाशित उद्घाटन भाषण का कुमारी वीथिका सरकार, पटना द्वारा किया गया हिन्दी रूपान्तर।—सं०]

'साहित्य' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। साहित्य के भिन्न-भिन्न विभाग हैं। साहित्य का उद्देश्य लेकर भी भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। किसी के विचार से साहित्य का उद्देश्य सामाजिक हितसाधन है, फिर किसी के विचार से साहित्य का उद्देश्य मनुष्यों को शिक्षा देना है। किसी ने साहित्य का उद्देश्य आनन्द-दान माना है। किसी का कहना है कि रस सृष्टि ही साहित्य का एकमात्र उद्देश्य है।

प्राचीनकाल में हमारे साहित्य की परिधि सीमित थी। वेद-उपनिषद् को हमारे देश का प्राचीन साहित्य कह सकते हैं। उस काल में अक्षरों का उद्भव न होने के कारण साहित्य का प्रचार और प्रसार सीमित था। लिपिबद्ध न होने के कारण भी अधिकांश साहित्य लुप्त हो गया। वेद गुरु-शिष्य परम्परा या वंश परम्परा से प्रचलित था। सुनकर याद रखने के कारण वेद श्रुति भी कहलाता है। अक्षर के आविष्कार के बाद साहित्य को अपना लिखित रूप मिला, पर एक ग्रन्थ की नकल करने में काफी समय और परिश्रम के कारण बहुत प्रचार नहीं हो पाया। हाथों से लिखा जाता था इसलिए उस काल में अधिकांश ग्रन्थ संक्षेप में या सूत्राकार में लिखे जाते थे। स्वल्प वाक्यों में बहुत सारे विषयों का परिवेशन किया जाता था।

पठन-पाठन के समय में भी एक साथ दो-चार छात्रों से अधिक को नहीं पढ़ाया जाता था। बाद में उस पर कई छात्रों द्वारा तर्क, विचार-विमर्श एवं आलोचना का आयोजन होता था और इस क्रम से भाष्य, टीका, टिप्पणी के कारण इसका आयतन बढ़ जाता था।

सूत्र साहित्य का उत्कृष्ट उदाहरण ब्रह्मसूत्र है। ब्रह्म शब्द का अर्थ वेद है। वेद का वाक्य लगता है एक सूत्र से ग्रथित है। वेद के विशेष अंशों को स्मरण रखने के लिए ही ब्रह्मसूत्र रचित हुआ। बाद में इसकी व्याख्या के लिए अनेक टीकाएँ एवं भाष्य किये गये। आचार्य शंकर ने इसके एक भाष्य की रचना की। उनके पूर्ववर्ती कालों का भाष्य नहीं मिलता है। उन भाष्यों के लुप्त होने के किसी कारण का पता नहीं चलता है। अनुमान किय जाता है कि शांकर भाष्य इतना सुन्दर तथा सुरचित है कि दूसरे भाष्यों को अप्रयोजनीय समझ कर उन्हें उपेक्षित कर दिया गया। काल की अग्नि परीक्षा में वे सब उत्तीर्ण नहीं हुए या उनके लुप्त होने का दूसरा कारण भी हो सकता है! भामती नामक टीका शंकर भाष्य पर लिखी गयी। भामती टीका पर एक और टीका लिखी गयी जिसे वेदान्त कल्पतरु कहा जाता है। कुछ काल के पश्चात वेदान्त कल्पतरु पर भी एक टीका लिखी गयी जिसका नाम कल्पतरु परिमल

है। इस तरह एक ही ग्रन्थ को परम्पराक्रम में समझाने की चेष्टा की गयी है। उस काल में ऐसी ही रीति प्रचलित थी।

उस समय व्यक्ति अधिक चिन्तनशील थे, बोलते कम थे। इस काल में मनुष्य का स्वभाव इसके विपरीत दिखाई देता है। हमलोग सोचते कम, बोलते ज्यादा हैं। गुजरात में ऐसा पाया जाता है कि जिनके पास धन है, वही धर्म पुस्तक छपवाते हैं। ग्रन्थों की संख्या अधिक है। किन्तु क्रेता की संख्या कम है। गुजरात में एक पत्रिका है जिसके ग्राहक दो लाख हैं। अपने को सुसंस्कृत एमं धार्मिक वनाने हेतु समय नहीं निकाल पाते हैं किन्तु दूसरे को शिक्षा देना हमारी एक आदत सी वन गयी है।

पहले व्यक्ति कम पढ़ते लिखते थे। उस समय बड़े ज्ञानी पडित कम थे। अब शिक्षा में विस्तार हो गया है। हजार-हजार ग्रन्थ प्रकाशित किये गये हैं। माना कि सभी ग्रन्थ उपयोगी नहीं हैं। पर शिक्षा का प्रसार अबाध रूप से जारी है।

हमलोग कभी कहते हैं कि मनुष्यों की बुद्धि अधोगामी हो रही है, सद् चिन्तन पर उनकी दृष्टि नहीं है। पर यह कथन सत्य नहीं है। इसका प्रमाण है रामकृष्ण मठ मिशन से प्रकाशित ग्रन्थों की वढ़ती मांग। इन ग्रन्थों की माँग इतनी अधिक है कि उसकी पूर्ति करना सम्भव नहीं हो रहा है। मनुष्यों में ज्ञान की प्यास बढ़ रही है एवं मुद्रण व्यस्था के चलते प्यास बुझाना सहज हो गया है। ग्रन्थ अभी मनुष्यों के पास सुगमता पूर्वक उपलब्ध कराया जा सकता है।

पहले शिक्षा का प्रसार बहुत कम था। ज्यादातर गाँव में एक चिट्ठी पढ़ने के लिए भी कम ही लोग मिलते हैं। उस समय में धनी-निर्धन, उच्च-नीच सभी श्रेणियों में लड़कियों की साक्षरता बहुत ही कम थी। हम जानते हैं कि माँ सारदा देवी ने पढ़ना आरम्भ किया था, पर अपने भगिना हृदय के अत्याचार से उन्हें अपनी पढ़ाई बंद करनी पड़ी। सामाजिक रीति भी कु[छ] ऐसी ही थी। लड़कियों की शिक्षा में उस समय घर बाहर सभी ओर से बाधा पहुँचायी जाती थी। अ[ब] इस विचार में परिवर्तन हो गया है। लड़के तथा लड़कियाँ पढ़ने की ओर अग्रसर हो रहे हैं। निरक्षरता दू[र] करने के लिए सरकारी प्रयास भी प्रशंसनीय है। रामकृष्ण संघ की ओर से वयस्क शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा हो रही है। यह लक्षण शुभ प्रतीत होता है।

आजकल शिक्षा, साहित्य तथा ज्ञान के विस्तार में ग्रन्थागार या लाईब्रेरी की भूमिका बहुत बड़ी है। उस जमाने में अमीरों के घर पर अपना व्यक्तिगत ग्रन्थागार होता था। वहाँ आम जनता का प्रवेशाधिकार नहीं था। उन ग्रन्थागारों में साहित्य का रसास्वादन आम जनता नहीं कर सकती थी। अब शहर गाँव सभी मुहल्ले में पुस्तकालय की स्थापना की गयी है। किताब खरीद कर पढ़ने की सामर्थ्य जिनमें नहीं है, उनलोगों को भी ग्रन्थागार में पढ़ने की सुविधा मिल रही है। इसलिए ऐसे ग्रन्थागारों की स्थापना अपेक्षित है।

जमीन में खाद डालने के बाद अच्छे पौधे के साथ कुछ खराव पौधे भी उग जाते हैं, ठीक उसी तरह साहित्यों के प्रचार के साथ-साथ कुछ असत् साहित्यों की भी सृष्टि होती है। इसका मतलब यह नहीं कि खराब पौधों के डर से जमीन में खाद डाली ही न जाय। इस प्रकार साहित्यिक सुधी समाज का कर्तव्य है सब्यसाची की तरह एक हाथ से साहित्य के क्षेत्र से गंदगी को साफ करना तथा दूसरे हाथ से सत्साहित्य की सृष्टि करना। कानूनी सहायता से यह कार्य असम्भव है।

साहित्य का उद्देश्य है विभिन्न प्रकार के रसों की सृष्टि करना। कोई-कोई सभी रसों के आस्वादन से आनन्द लेते हैं, किसी-किसी को कोई विशेष एक रस प्रिय होता है। मनुष्यों में रस की प्यास बुझाने के लिए साहित्य की आवश्यकता है। इसलिए साहित्य मनुष्यों की बुद्धि को मार्जित, रुचि को परिष्कृत तथा मन को उन्नततर कर सकता है। इस तरह सत् साहित्यों से मनुष्यों का कल्याण होता है। मन को ऊँचे स्तर पर

ले जाने के लिए, ऊँची लय पर बांध कर रखने के लिए, मनुष्यों को पशुत्व से देवत्व की ओर ले जाने के लिए सत् साहित्यों की विशेष आवश्यकता है। इसलिए साहित्यिकों को केवल सृष्टि के कार्य में निरत रहने से नहीं होगा, वह सृष्टि समाज के लिए हानिकारक या लाभदायक होगी या नहीं उस ओर भी ध्यान देना होगा। यह उन लोगों का सामाजिक दायित्व है। सुसाहित्य की सृष्टि ही नहीं, बल्कि उनके प्रचार का प्रयास भी करना होगा। साहित्य मनुष्यों के मानसिक जीवन का संस्कार करता है। पाठकों के सामने वह महान् आदर्शों को उपस्थित करता है। यह कथन सत्य है कि साहित्य मनुष्यों के मन को प्रभावित कर जिस तरह मंगलमय पथ की ओर चालित करता है वह और किसी से सम्भव नहीं।

सत्, शुद्ध जीवन बिताने के लिए सत्संग आवश्यक है, पर हमेशा यह उपलब्ध नहीं होता है। चाहने पर भी सत्संग हमेशा मिलना संभव नहीं, पर सद्ग्रन्थ दुर्लभ नहीं हैं। उन ग्रन्थों की चर्चा, उनकी आलोचना-समालोचना से सत्संगों का काम ही होता है। अच्छा व्यक्ति ढूंढने के लिए कहाँ जाना होगा पता नहीं, पर अच्छी पुस्तकें तो सदैव उपलब्ध हैं। सद्ग्रन्थों का सत्संग तो सुगमता पूर्वक हो सकता है। हमारे वर्त्तमान साहित्य सम्मेलन के आलोच्य विषयों पर नजर डालने से पता चलता है कि इसका उद्देश्य है—रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा को साहित्य के माध्यम से प्रसारित करने के लिए सम्मिलित रूप से प्रयास करना। यह प्रयास हमारे लिए मंगलदायक होगा। वक्ता तथा श्रोताओं के आग्रह से समझा जाता है कि मनुष्य ऊँचे भावों को ग्रहण करने के लिए आग्रही हैं। आग्रह नहीं रहने से श्रोतागण नहीं आते, किताबें भी नहीं खरीदते। अर्थाभाव में सद्ग्रन्थों के क्रय करने के लिए लालायित नहीं होते।

पहले ही कहा गया है कि रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य की माँग अभी बढ़ गयी है। विशेष रूप से स्वामीजी की जन्म शताब्दी के बाद से इसका व्यापक विस्तार हुआ है। नयी-नयी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। उद्बोधन से 'स्वामी विवेकानन्द की वाणी-रचना' नामक समग्र ग्रन्थावली के नये-नये संस्करण प्रकाशित हुए। यह एक खुश खबरी है कि स्वामीजी की जन्म-शताब्दी के समय गुजरात सरकार की सहायता से गुजराती भाषा में स्वामीजी की रचनावली प्रकाशित हुई, एवं पंचायत ग्रन्थागार के माध्यम से वह गुजरात के प्रायः सभी गाँवों में पहुँचायी गयी।

इस क्षेत्र में एक विषय ध्यान देने योग्य है कि मनुष्यों को जानने की इच्छा है, इसलिए नयी नयी पुस्तकें चाहिए। हो सकता है उसके साथ कुछ अवांछित साहित्यों की सृष्टि होगी। पर उस आशंका से सद्ग्रन्थों का प्रकाशन बंद नहीं होना चाहिए। ऊँचे आदर्श के प्रसार के साथ वे सभी लुप्त हो जाएंगे। स्वामीजी का कहना है कि अधिक लोगों को वंचित कर हम कुछ के भीतर ज्ञान भंडार को सीमित रखते हैं, यह बहुत अन्याय है। अब हमारा कर्तव्य है कि मणिमंजूषा में संचित धन-रत्नों को आम जनता में वितरण करें। ये सारे ग्रन्थ आम जनता को सहजबोध्य हों, यही चेष्टा सुधी समाज को करनी होगी।

इसका मतलब यह नहीं कि मौलिक चिन्तन, नयी सृष्टि नहीं होगी। पर उसके साथ साथ स्वामीजी की भावधारा को चारों ओर फैला देना हमारा कर्तव्य है। विशेषत: इस युग-संधि के क्षण में, देश जब विभिन्न समस्याओं में फँसा हुआ है, अन्य भावधाराओं से विभ्रांत है, ऐसी स्थिति में सत् साहित्य हमारे पथ के निर्धारण में सहायक होगा। इन सारे ग्रन्थों के पाठ से अभी जिस तरह उत्साह, उद्दीपन दिखाई दे रहा है उसका ठीक ठीक रूप से परिचालन करने से देश का कल्याण होगा। इस सम्बन्ध में देश के ज्ञानी साहित्यिकों की जो विशाल जिम्मेवारी है उसका पालन करने में कोई भूल नहीं हो। मेरा अनुरोध है कि महान व्यक्ति के द्वारा दिये गये

आलोक से सद्ग्रन्थों की सृष्टि कर आम जनता के हृदय को आलोकित करने का व्रत लेने का कष्ट सुधी समाज करे ताकि ज्ञानलोक का प्रचार एवं प्रसार सर्वत्र हो जाय। इस कार्य में प्रबुद्ध साहित्यकों की सफलता की शुभकामना करता हूँ।

□

बुद्ध पूर्णिमा के अवसर पर

बुद्ध का अद्भुत मस्तिष्क

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

वैशाखीपूर्णिमा एक अति शुभ दिवस है। किंवदन्ति है कि भगवान बुद्ध का जन्म इसी दिन हुआ था, और उनको बोधि अथवा निर्वाण भी इसी दिन प्राप्त हुआ था। यही नहीं, इसी शुभ दिन उन्होंने महा परिनिर्वाण में अपनी नश्वर लीला का संवरण भी किया था। वे एक अद्वितीय महापुरुष थे, जिनके चरित्र का सौन्दर्य एवं सौरभ ढाई हजार वर्षों बाद, आज भी अम्लान बना हुआ, असंख्य लोगों को मोहित, प्रेरित कर रहा है। स्वामी विवेकनन्द भी उनके विशेष अनुरागी थे। स्वामी जी के अनुसार बुद्ध, चरित्र एवं व्यक्तित्व की दृष्टि से विश्व के सबसे महान पुरुष हैं। उन्होंने बुद्ध एवं बौद्ध धर्म पर अनेक व्याख्यान एवं कक्षालय किये हैं। बुद्धधर्म के ऐतिहासिक महत्व पर, अथवा उनके सिद्धांन्तों पर; अथवा बुद्ध के सन्देश पर ही क्यों न हो, —चाहे किसी भी विषय पर बोलते समय स्वामीजी उनके अद्भुत चरित्र पर प्रकाश डालना नहीं भूलते थे।

"विश्व को बुद्ध का सन्देश" नामक अपने प्रवचन में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं; "और उनके अद्भुत मस्तिष्क पर विचार करो। कहीं भावुकता का नाम भी नहीं। वह विराट मस्तिष्क कभी भी अन्धविश्वासी नहीं हुआ।" अन्यत्र स्वामीजी बुद्ध के चित्त के सन्तुलन और स्वस्थता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं; "उस व्यक्ति की स्वस्थचित्तता को देखो। कोई ईश्वर नहीं, कोई देवदूत नहीं, कोई शैतान नहीं। यह सब कुछ (उन्होंने स्वीकारा) नहीं। सदा दृढ़ एवं स्वस्थ; मस्तिष्क का प्रत्येक कोषाणु जीवन के अन्तिम क्षण तक पूर्ण एवं स्वस्थ।.......ओह, यदि मुझमें उस शक्ति का बिन्दु-मात्र होता। वे थे विश्व के सबसे स्वस्थचित्त दार्शनिक, उसके सर्वश्रेष्ठ एवं स्वस्थतम आचार्य।"

मानसिक स्वास्थ्य और विकृति—

मन की गतिविधियों के सम्बन्ध में सामान्यत: स्वस्थचित्तता जैसे शब्दों का प्रयोग तभी किया जाता है जब उसका विकृत, अस्वस्थ अथवा रोगग्रस्त मन से अन्तर बताना हो। अत: यहाँ पर इस शब्द का उपयोग नकारात्मक अर्थ में, यह बताने के लिए किया गया है कि बुद्ध के मस्तिष्क में किसी भी प्रकार की न्यूनतम विकृति भी नहीं थी। अत: बुद्ध के चरित्र के वैशिष्ट्य को समझने के लिए मानसिक विकृति एवं मनोविकार के

कारण एवं प्रकारों के बारे में कुछ बातों को जानना उपयोगी होगा।

हममें से अधिकांश व्यक्तियों के मन में विचारों, भावनाओं, स्मृतियों, कल्पनाओं एवं भौतिक संवेदनाओं का एक असंबद्ध प्रवाह निरंतर बहता रहता है। अगर मन की इस उधेड़-बुन को टेपरेकार्ड किया जाय तो वह कुछ इस प्रकार होगी, "लेख शीघ्र पूरा करना है... प्यास लगी है...ओह बड़ी गरमी है, ... मच्छर ने काटा...." इत्यादि। सौभाग्य वश यह असंबद्ध वृत्ति-प्रवाह सन्निपात, उन्माद अथवा पागलपन की अवस्थाओं के अतिरिक्त वाणी एवं इन्द्रियों के द्वारा कभी बाहर प्रकट नहीं होता। बुद्धि, इच्छा शक्ति की सहायता से इन पर नियंत्रण बनाये रखती है। इस बेतरतीब वृत्ति समूह में से बुद्धि देश, काल एवं उपयोगिता के अनुसार कुछ का चयन कर अन्य की उपेक्षा कर देती है। और इच्छा-शक्ति इन चुने हुए विचारों को सुसंबद्ध बनाकर एक तर्कसंगत चिन्तन का रूप प्रदान करती है। इस प्रकार मानसिक उधेड़बुन न तो पूरी तरह अभिव्यक्त हो पाती है और न ही इन्द्रियों और देह को अनियंत्रित रूप से परिचालित करने में समर्थ होती है।

लेकिन हमारी बुद्धि एवं इच्छा शक्ति इतनी प्रबल एवं स्वतंत्र नहीं हैं, जितनी होनी चाहिए। वे हमारी चेतन-अचेतन असंख्य इच्छाओं, आशा-आकांक्षाओं, वासनाओं एवं पूर्व संस्कारों द्वारा प्रभावित होती रहती हैं। सामान्य स्थिति में मन के विभिन्न अंगों—वासनाओं, इच्छाओं, विचारों इत्यादि—के बीच बुद्धि एवं इच्छाशक्ति सन्तुलन बनाये रखने में समर्थ होती हैं जिससे दैनन्दिन जीवन के कार्यकलाप, सामाजिक व्यवहार एवं जीवनयात्रा का निर्वाह सुचारु रूप से हो जाता है। लेकिन कभी-कभी यह सन्तुलन बिगड़ जाता है। और तब विभिन्न प्रकार एवं स्तर के मनोविकार दिखाई देने लगते हैं। कुछ अभागे लोग जन्म से ही विकृत-मस्तिष्क होते हैं। उनकी बुद्धि अविकसित एवं इच्छाशक्ति दुर्बल होती है। ये लोग अपनी अचेतन प्रेरणाओं एवं वासनाओं द्वारा निःसहाय की तरह इधर-उधर परिचालित होते रहते हैं। कुछ लोग वय प्राप्त होने पर जीवन के घात-प्रतिघातों एवं तनावों को सहन करने में असमर्थ हो मस्तिष्क का सन्तुलन खो बैठते हैं। सौभाग्य से जन्मगत अथवा परवर्ती जीवन में प्राप्त स्थायी मनोविकार के रोगी कम ही होते हैं। लेकिन जीवन में कभी न कभी कुछ दिनों, महीनों अथवा वर्षों तक अस्वस्थचित्तता के शिकार होने वाले लोगों की संख्या अधिक है। अमेरिका में तो २० प्रतिशत लोगों को कभी न कभी पागलखाने की हवा खानी पड़ती है। और ऐसे लोगों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है।

स्थायी अथवा अस्थायी मनोविकार के रोगियों को छोड़कर बाकी लोगों का मन इतना संतुलित एवं संयत रहता है कि उन्हें हम 'सामान्य' या 'स्वस्थचित्त' कह सकते हैं। लेकिन क्या वे सचमुच स्वस्थ हैं? कुछ मनोविज्ञ तो यहाँ तक कहते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य नामक कोई स्थिति ही नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई मानसिक विकृति होती है। यह कथन अतिशयोक्ति प्रतीत होता है, लेकिन इसमें कुछ सत्यता भी है। नरश्रेष्ठ अर्जुन का दृष्टान्त इस बात को समझने के लिए उत्तम है। महाभारत का यह महानतम योद्धा, रणक्षेत्र में अपने सगे सम्बन्धियों को मरने-मारने के लिए कटिबद्ध देख कर विचलित हो गया था। उसमें मनोविकार या न्यूरोसिस के लक्षण दिखाई देने लगे थे। उसे पसीना आ गया, मुँह सूख गया और हाथपैर कांपने लगे। यहाँ तक कि गाण्डीव धनुष भी हाथ से फिसल गया। वह ऐसी बातें बकने लगा जो उस जैसे नरश्रेष्ठ को शोभा नहीं देती थीं। हम सभी के जीवन में इस प्रकार के अवसर आते हैं, जब हम अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं, और मनोविकृति के शिकार हो जाते हैं। लेकिन ठीक-ठीक स्वस्थ चित्त तो वही है जो कैसी भी विषम परिस्थिति में, यहाँ तक कि मृत्यु के मुख में भी अपनी बुद्धि एवं चिन्तन की स्पष्टता को बनाये रख सकता है तथा अपनी इच्छा शक्ति का उपयोग कर

सकता है। स्वामीजी के अनुसार बुद्ध इसी प्रकार के एक पूर्ण स्वस्थ चित्त महापुरुष थे।

स्वस्थ चित्त के लक्षण—

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार स्वस्थचित्तता का प्रथम लक्षण है भावुकता का अभाव। जीवन के प्रति हमारा दृष्किोण एवं जीवन में हमारी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ अधिकतर भावनाओं द्वारा परिचालित होती हैं। हम युक्ति और विचार द्वारा कम काम लेते हैं। अर्जुन की भावुक प्रतिक्रिया की अलोचना करते हुए स्वामीजी कहते हैं, "अर्जुन के मन में कर्तव्य और भावना के वीच द्वन्द्व है। हम जितने पशु पक्षियों के निकट होते हैं, उतने ही हम भावनाओं के नर्क में रहते हैं। इसे ही हम प्रेम कहते हैं। ... यह आत्म-प्रवंचना है।... पशुओं जैसी भावुकता पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकती।... अभी अर्जुन अपनी भावनाओं के वश में है। वह, जैसा उसे होना चाहिए—संयत, प्रज्ञा के शाश्वत् आलोक के माध्यम से क्रियारत ऋषि—नहीं है।

इसी तरह की अथवा इनसे भी कठिनतर परिस्थितियों में बुद्ध की प्रतिक्रिया अर्जुन की प्रतिक्रिया से नितांत भिन्न थी। उनके द्वारा प्रवर्तित नवीन धर्मान्दोलन के दो प्रमुख स्तम्भों, उनके दो शिष्यों की अकाल मृत्यु पर न तो वे विचलित ही हुए थे, और न ही उन्होंने विलाप ही किया था। वरन् उन्होंने उस अवसर का लाभ उठाकर अपने अन्य शिष्यों को जीवन की क्षणभंगुरता का उपदेश दिया। हत्यारों से सामना होने पर या विरोधियों द्वारा लांछित किये जाने पर भी वे शान्त ही वने रहे थे।

इसका अर्थ यह नहीं कि बुद्ध में भावनाएँ नहीं थीं। यहाँ हमें भावुकता और हृदयवत्ता के वीच अन्तर को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। बुद्ध में हृदयवत्ता, हृदय की अनुभव शक्ति पूर्ण मात्रा में थी। उनका विशाल हृदय सभी प्राणियों के दुःख-कष्ट को अच्छी तरह अनुभव कर सकता था। अर्जुन रणक्षेत्र में जिस भावना से अभिभूत हुआ था, उसे गीताकार ने 'कृपा' कहा है। भगवान बुद्ध के हृदय में भी संसार के सभी प्राणियों के प्रति अनुकम्पा, करुणा अथवा कृपा का भाव था। लेकिन इन दोनों भावनाओं में महान अन्तर है। प्रथम कृपा एक महत् दोष है, जब कि दूसरी एक महान गुण। श्रीरामकृष्ण स्वजन, वन्धु-वान्धव के प्रति प्रेम को माया और संसार के सभी प्राणियों के प्रति प्रेम को दया कहते थे। माया वन्धन का कारण है, जबकि दया मुक्ति का सोपान। बुद्ध की भावना इन दोनों से भी उच्च कोटि की थी। वह एक मुक्त महापुरुष के विशाल हृदय की जगत कल्याण के लिए स्वाभाविक संवेदनशीलता थी।

एक प्रकार की अस्वाभाविक और अहितकर भावुकता धर्म जगत् में, विशेषकर भक्तिमार्ग में पायी जाती है। भगवान के प्रति आन्तरिक प्रेम भक्ति योग कहलाता है, लेकिन कठोर संयम और त्याग के विना वह छिछली भावुकता का रूप ले सकता है, जो आध्यात्मिकता को नष्ट कर पतन की ओर ले जाती है। ऐसी भावप्रवणता जो जीवन में स्थायी परिवर्तन पैदा न करे, और न ही काम, क्रोध, लोभ आदि को जीतने की शक्ति प्रदान करे सदा त्याज्य है। बुद्ध इस बात को अच्छी तरह जानते थे, तथा अपने शिष्यों में इसे पनपने नहीं देते थे। एक वार उनका एक शिष्य उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगा कि वे भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी बुद्धों में सबसे महान हैं। बुद्ध ने उससे पूछा कि क्या वह सभी वर्तमान और भावी बुद्धों को जानता है! शिष्य को स्वीकार करना पड़ा कि उसे यह ज्ञान नहीं है। तब बुद्ध ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा कि उसका कथन सत्य ज्ञान के अभाव में थोथी भावुकता मात्र, और मूर्खतापूर्ण है। एक व्यक्ति सदा उनके चहरे की ओर इस तरह देखता रहता था मानो उससे कोई ज्योति निकल रही हो। बुद्ध ने उसे डांट कर दूर हटा दिया।

स्वस्थचित्तता का दूसरा लक्षण है अन्धविश्वासों का अभाव। पाप के फल स्वरूप दंड का भय, इहकाल और परकाल में अपने शुभ कर्मों के फलों को भोगने की, पुरस्कार पाने की लालसा एवं स्वयं की शक्ति एवं चैतन्य

स्वरूप पर अनास्था, मनुष्य को मानवेतर देवी देवताओं, भूत-प्रेतों आदि में विश्वास करने को बाध्य करती हैं। मानव की दुर्बलता एवं स्वयं एवं परमात्मा में विश्वास का अभाव ही इस प्रकार के अस्वाभाविक धार्मिक अन्धविश्वासों का कारण है। इन धार्मिक अन्धविश्वासों के अतिरिक्त आधुनिक युग में एक 'वैज्ञानिक' अन्धविश्वास भी है जिसके शिकार तथाकथित बुद्धिवादी, विचारशील व्यक्ति होते हैं। ये लोग देवी-देवताओं में विश्वास नहीं करते लेकिन कैसी भी अनर्गल बात तत्काल स्वीकार कर लेंगे यदि यह कह दिया जाय कि वह बात आईन्स्टाईन पाश्चर, अथवा और किसी प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने कही है। वे उस कथन की सत्यता स्वयं विचार कर परखने का प्रयत्न नहीं करेंगे। बुद्ध इन दोनों प्रकार के अन्धविश्वासों के विरोधी थे। वे नहीं चाहते थे कि उनके शिष्य स्वयं उनकी ही बात बिना विचारे स्वीकार करें।

प्रत्येक अवतारी महापुरुष एक क्रान्तिकारी होता है। वह उन पुरानी अवस्थाओं, अन्धविश्वासों एवं प्रथाओं पर कुठाराघात करता है, जो कालोपयोगी नहीं रह जाती। लेकिन धीरे-धीरे वे स्वयं इस प्रकार की आस्थाओं एवं अन्धविश्वासों के केन्द्र बन जाते हैं। बुद्ध ने इस खतरे के विरुद्ध अपने शिष्यों को सतर्क किया था। वे नहीं चाहते थे कि उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्य उनकी पूजा करें। अपनी मृत्यु शैया पर उन्होंने शोकसंतप्त शिष्य आनन्द को कहा था; "मेरे लिए विलाप न करो। मेरा विचार त्याग दो। मैं तो अब नहीं रहा। स्वयं अपनी मुक्ति के लिये प्रयत्न शील होओ। तुममें से प्रत्येक मेरे ही तुल्य है। मैं भी तुम लोगों-सा ही हूँ। बुद्ध आकाश सदृश अनन्त ज्ञान का नाम है। मुझ गौतम ने उस अवस्था को प्राप्त किया है। उसके लिए संघर्ष करने पर तुम सभी उसे प्राप्त करोगे।"

प्रज्ञा अथवा शुद्ध बुद्धि का स्वच्छ आलोक स्वस्थ मस्तिष्क का तीसरा लक्षण है। स्वामीजी बुद्ध को विश्व का स्वस्थतम दार्शनिक अथवा विचारक मानते हैं। जिस प्रकार भावना-प्रधान लोगों में मनोविकृति की संभावना है, उसी प्रकार विचार-प्रवण व्यक्ति भी असन्तुलित और अस्वस्थ हो सकते हैं। ज्ञान मार्ग, विचार पथ भी कोरा पाण्डित्य तर्क-वितर्क का समूह मात्र हो कर रह सकता है। ऐसा दर्शन एवं चिन्तन जिसका दैनन्दिन जीवन की समस्याओं के साथ कोई सम्बन्ध ही न हो, स्वामीजी और बुद्ध दोनों की दृष्टि में अस्वस्थचित्तता का द्योतक है। ऐसे शब्दजाल एवं वागाडम्बर को शंकराचार्य चित्त को विभ्रमित करने वाले महा अरण्य की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार वाद-विवाद की कला तथा शास्त्र-व्याख्यान-कौशल केवल पण्डितों के विलास के साधन हैं, मोक्ष के नहीं। यही कारण है कि बुद्ध ने आत्मा, परमात्मा, ईश्वर आदि विषयक विवादास्पद प्रश्नों का, जिनका कोई सर्वमान्य एवं सुस्पष्ट समाधान संभव नहीं है, कोई उत्तर नहीं दिया। इसके बदले उन्होंने अपने दर्शन को दुःख, उसका कारण, और निवारण रूपी दैनन्दिन जीवन सम्बन्धित समस्याओं से ही सम्बधित रखा।

मानसिक स्वस्थता का चतुर्थ लक्षण है सबल इच्छाशक्ति जो भगवान बुद्ध में प्रचुर मात्रा में थी। लेकिन अन्तःकरण के अन्य अंगों की तरह इसे भी सुनियोजित होना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में अदम्य इच्छाशक्ति की आवश्यकता है, लेकिन यह भी दिशाभ्रष्ट होकर कृच्छ्र साधन की अति का रूप ले सकती है। स्वयं बुद्ध ने कठोर तपस्या कर शरीर को अस्थिचर्ममात्र कर डाला था। उसके बाद उन्हें यह अनुभव हुआ कि यह अस्वाभाविक है। अतः उन्होंने मध्यम पथ का प्रतिपादन किया था।

इच्छाशक्ति का दूसरा सदुपयोग लोक-कल्याण के लिये किया जा सकता है। लेकिन इसमें भी दूषण की संभावना है। जगत्कल्याण के कार्यों को करते समय नाम-यश की अभिलाषा, एवं स्वर्गादि लाभ की इच्छा आ जाती है। बुद्ध के जगत्-कल्याण के प्रयत्नों में इस प्रकार

का कोई भी स्वार्थ नहीं था। निरीह पशुओं की बलि रोकने के लिए वे अपने जीवन का उत्सर्ग करने तक को तैयार थे। उनका सिद्धांत था; दूसरों का भला करो क्योंकि भला करना भला है। बस यही था बुद्ध का सीधा-सादा सिद्धांत। ऐसा निष्काम कर्मयोगी विश्व ने आज तक दूसरा नहीं देखा।

बुद्ध एक अद्वितीय राजयोगी भी थे। उनकी मूर्तियों एवं चित्रों में वे योगासन में ध्यानस्थ दिखाई देते हैं। धारणा, ध्यान एवं समाधि का यह योगमार्ग भी खतरों से खाली नहीं है। अधिकांश लोग योग का अर्थ आसन करना और नाक दबाकर प्रणायाम करना ही समझते हैं। वे उसका उपयोग दीर्घायु होने तथा शारीरिक रोग निवारण के लिए करते हैं। अन्य साधक योग से प्राप्त सिद्धियों से प्रलुब्ध हो पथभ्रष्ट हो जाते हैं। चमत्कारों को महत्व देने वाले एवं सिद्धियों में आस्था रखने वाले भिक्षुओं के प्रति बुद्ध अत्यन्त कठोर थे। उनके एक शिष्य ने एक बार एक ऊँचे स्तंभ पर रखे रत्नजड़ित पात्र को सिद्धि के बल पर नीचे उतार कर अपना माहात्म्य प्रकट करना चाहा। बुद्ध ने उसका पात्र तोड़कर उसकी भर्त्सना की थी। ध्यान को महत्व देते हुए भी बुद्ध इस बात में सतर्क थे कि ध्यान के कारण अपने पड़ोसियों या साथियों की उपेक्षा न हो। यदि पास के कमरे में कोई साथी बीमार हो तो ध्यान को त्याग कर उसकी सेवा-सुश्रूषा करना पहला कर्तव्य है। यह न करके ध्यान में बैठे रहना बुद्ध की दृष्टि में अक्षम्य अपराध था।

उपसंहार—

सचमुच बुद्ध का मस्तिष्क अद्भुत था। उसमें किसी भी प्रकार की विकृति, विकार अथवा असन्तुलन नहीं था। उनकी स्वस्थचित्तता इस बात में है कि वे मुक्ति के विभिन्न योगों की त्रुटियों को दूर रख सके थे। वे हृदयवान थे, पर भावुक नहीं। विचारशील थे, पर शुष्क तार्किक नहीं। ध्यान योगी थे, पर चमत्कारों का दिखावा करने वाले नहीं। सर्वोपरि वे अत्यन्त व्यावहारिक थे तथा उन्होंने पूर्णरूप से स्वार्थ रहित हो जीवन भर लोक कल्याण के लिए अथक परिश्रम किया था।

स्वस्थचित्त ज्ञानी विरल है। निर्दोष योगी दुर्लभ है। विकृति रहित भक्त मिलना कठिन है। निःस्वार्थ कर्मी भी मुश्किल से मिलता है। इन चारों का सुसन्तुलित समन्वय एवं पूर्ण विकास एक ही व्यक्ति में पाना तो और भी दुर्लभ है। बुद्ध ऐसे ही एक अतिविरल महापुरुष थे जिनकी बुद्धि, हृदय और कार्यक्षमता तीनों पूर्ण विकसित, सुसन्तुलित और त्रुटिहीन थे। उनके मस्तिष्क का प्रत्येक कोषाणु पूर्ण विकसित ही नहीं था, बल्कि वह सुचारु रूप से कार्य भी करता था। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें विश्व के महानतम व्यक्ति की संज्ञा देकर अपनी उच्चतम श्रद्धांजलि अर्पित की है।

●

अगर चोर और लुटेरे आकर तुम्हारे शरीर के अंग आरे से काटने लग जायँ और उस अवसर पर तुम्हारे मन में उन लुटेरों के प्रति क्रोध या द्वेष आ जाय, तो तुम मेरे सच्चे अनुयायी नहीं कहे जा सकते।

ऐसे प्रसंग पर भी तुम्हारे मन में द्वेष नहीं आना चाहिए, तुम्हारे मुँह से बुरे शब्द नहीं निकलने चाहिए, तुम्हारे अंतःकरण में दया और मैत्री की भावना रहनी चाहिए, और अपने शत्रु को आधार स्वरूप मानकर समस्त संसार पर तुम्हें निस्सीम मैत्री भावना करनी चाहिए। —भगवान बुद्ध

अखण्ड आनन्द का देश : उत्तराखण्ड का दिव्य परिवेश (२)

—'मुसाफिर

मार्ग में कहीं उत्तुंग पर्वतश्रेणियाँ, कहीं सघन प्रान्त की हरीतिमा और कहीं पतितपावनी त्रिपथगा का वक्र प्रवाह देखकर हमलोग आत्मविभोर हो उठते थे। लगता था—ऐसे मनोमुग्धकारी दृश्यों को निर्निमेष देखते ही रहें। किन्तु द्रुतगामी यह निगोड़ी यात्री बस रुक रुक कर चले तब न ! आह, जो लोग पूर्व के दिनों में पैदल ही यात्रा करते थे, वे कष्ट पाकर भी कैसे आनन्द का लाभ करते थे ! अभी भी इक्के दुक्के साधु पैदल यात्रा करते दिखाई पड़े। इस प्रकार प्रकृति के नयनाभिराम दृश्यों का उपभोग करते-करते ८७कि०मि० की यात्रा तय कर लगभग १० बजे लंका पहुंचे। यहाँ से गंगोत्री केवल १३ कि० मि० रह जाती है। सभी बसों को यहाँ जाँच-पड़ताल के लिए रुकना पड़ता है, क्योंकि यह चीन की सीमा पर आती है। परीक्षकों ने सभी यात्रियों के नाम तथा पते लिख लिये। यहाँ मिलिट्री का एक बड़ा केन्द्र है। बस-स्टैन्ड के सामने ही श्री रामजी का एक सुन्दर मंदिर था जिसमें फौजी जवान भजन-कीर्तन कर रहे थे, क्योंकि रविवार की छुट्टी थी। बाहर के देशों में तो फौजी जवान मौज करने में अपनी छुट्टियाँ बिता देते हैं किन्तु हमारे देश में आज भी कई जवान हैं, जो इस प्रकार भगवान का भजन कर छुट्टियों का सदुपयोग कर रहे हैं, यह सोच कर गर्व से छाती फूल उठी। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"धर्म ही इस देश का प्राण केन्द्र है........भारतवर्ष पुण्य भूमि है।" आह ! कितना सत्य!

कुछ देर बाद बस चल पड़ी। मार्ग में कुछ व्यक्तियों के बीच भयंकर वाद-विवाद छिड़ गया। एक वृद्ध का कहना था—यह वही लंका है, जिसमें कभी रावण राज्य करता था, अब विभीषण राज्य करता है। कुछ अन्य सज्जन यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे कि यह चीन देश की लंका है। हमलोग मुंह दबाकर हँसते रहे और माजरा देखते रहे। लगभग ११ बजे गंगोत्री पहुँच गये। बस के रुकते ही देखा—सामने ही गंगोत्री का मंदिर है। पास में ही पतितपावनी गंगा तीव्र गति से बह रही थी। नदी पर के पुल को पार कर दण्डी आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ के महन्त स्वामी पूर्णानन्द गिरि के नाम परिचय-पत्र हमारे पास था। वहाँ पहुँचते ही भिक्षा (दोपहर का भोजन) ग्रहण करनी पड़ी क्योंकि वहाँ भिक्षा का समय प्रातः १० बजे और शाम को ५ बजे था। एक मजेदार घटना वहाँ पर हुई। हममें से दो व्यक्ति चलते-चलते पिछड़ गये और दण्डी आश्रम का पता पूछते-पूछते आश्रम से भी आगे निकल गये। इस बीच बाकी दो व्यक्तियों ने दण्डी आश्रम में सब व्यवस्था कर ली। जब कुछ देर में बाकी दो नहीं पहुँचे तो एक व्यक्ति फिर से उनकी खोज में वापस पुल पार कर बस-स्टैंड, गंगोत्री का मंदिर इत्यादि स्थानों पर गया। अंत तक असफल होने पर वह निराश होकर लौट रहा था। तभी बाकी तीन लोगों से पुल के पास मुलाकात हो गयी क्योंकि खोये हुए व्यक्ति काफी देर पहले दण्डी आश्रम पहुँच गये थे और अब तीनों व्यक्ति खोजने वाले की खोज में निकल पड़े थे !

दोपहर के बाद पूरा आसमान मेंघाच्छन्न हो गया। फिर भी चारों गंगोत्री मंदिर का दर्शन करने निकल पड़े। मंदिर के पास ही पावनसलिला गंगा उत्तर वाहिनी होकर बह रही थी। सघन देवदारु वृक्षों से परिव्याप्त इस स्थान की प्राकृतिक सुषमा वर्णनातीत है। मंदिर एक पवित्र स्थल पर बना है। किंवदन्ती है कि प्रारंभिक मंदिर आद्य-शंकराचार्य ने बनवाया था, किन्तु बाद में गोरखा शासन काल में गोरखा सरदार अमरसिंह थापर ने नया मंदिर बनवाया और वह मंदिर भी जब क्षतिग्रस्त हुआ तो जयपुर नरेश ने वर्तमान मंदिर बनवाया। मंदिर के अन्दर प्रधान मूर्ति गंगाजी की थी, अन्य मूर्तियों में भगीरथ, यमुना, सरस्वती तथा शंकराचार्य आदि की देखी। पास ही भगीरथ शिला देखी जिस पर कुछ यात्री पिण्डदान कर रहे थे। कहते हैं कि राजा भगीरथ ने इस शिला पर बैठकर गंगा को पृथ्वी पर अवतरित करने के लिए कठोर तप किया था। सिंधु तट से हम लगभग दस हजार फीट की ऊँचाई पर थे। कड़कड़ाती ठंड का होना स्वाभाविक था। तिस पर आसमान भी मेघाच्छन्न था। गंगामाई में डुबकी लगाने की इच्छा पर भी साहस जुटा नहीं पा रहे थे, क्योंकि सभी को जुकाम था। चार में से केवल एक ही बहादुर निकला! बाकी हम तीनों ने पटवारी बुद्धि का सहारा ले कुछ जल अपने शरीर पर छिड़क कर इसे ही पवित्र स्नान माना।

दूसरे दिन १९ मई को भोर ४॥ बजे ही हम चारों गोमुख के लिए रवाना हुए। कई लोगों ने सुझाव दिया था "गोमुख का रास्ता अत्यंत विकट है, तथा फिलहाल बन्द है, अभी जाना उचित नहीं होगा।" आकाश भी मेघाच्छन्न था। फिर भी हम भगवान का नाम लेकर निकल पड़े। साथ में कोई पथ-प्रदर्शक नहीं था। एक कुली ने साथ में जाने का आश्वासन दिया था वह भी नहीं आया, अतः अपने साथ एक-एक छोटी बैग भर ली। कुछ आगे बढ़ते ही एक बड़ा साईन बोर्ड लटका मिला—"रास्ता बन्द है"। किन्तु हम तो गोमुख जाने के लिए कृतसंकल्प थे। आगे बढ़ते गये। प्रकृति के मनोरम सौंदर्य का उपभोग करते करते हिमालय के उच्च हिमशिखरों की आभा को निरखते हुए जा रहे थे कि एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हुआ। नीचे की ओर से काले मेघ द्रुत गति से ऊपर की ओर उठते हुए दिखे, गंगोत्री का मंदिर, बाजार इत्यादि कुछ ही क्षणों में आँखों से ओझल हो गये; आसपास की पहाड़ की चोटियाँ भी तीव्र गति से मेघाच्छादित हो गयीं। हमलोगों ने यह सोचकर कि कहीं वर्षा का सामना न करना पड़े, अपने चलने की रफतार तेज की ही थी कि हिम की वर्षा प्रारंभ हो गयी। कपास के समान मुलायम, हलका श्वेतवर्ण हिम टपकने लगा। इस समय हिम वर्षा का होना असंभावित था। हिमालय के सभी तीर्थों में यात्री मई-जून तथा सितम्बर-अक्टूबर में ही जाते हैं क्योंकि जुलाई-अगस्त में वर्षा होती है तथा नवम्बर से अप्रैल तक पूरा इलाका हिमाच्छादित रहता है। हमलोग अतः इस परिस्थिति के लिए कतई प्रस्तुत नहीं थे। साथ में न रेनकोट थे न छाते। भाग्य से कुछ पॉलीथीन की शीट थी, उसी को सिर पर ओढ़ लिया। कुछ आगे बढ़ने पर भगवान के कृपा से एक चट्टी मिली। संभवतः गोमुख के रास्ते पर यह एक मात्र चट्टी है। इस टूटी-फूटी झोंपड़ी में भी खड़े-खड़े हिमपात का सामना करना पड़ रहा था। किन्तु गरम-गरम चाय का इतना सुखद अनुभव विरल था। चाय पी रहे थे, उसी समय कुछ यात्री जो गोमुख से लौट रहे थे इस छोटी सी झोंपड़ी में प्रवेश कर गये। अब तो वहाँ खड़े रहने की भी जगह नहीं थी। हमलोगों ने लगभग ८ कि०मि० की दूरी तय कर ली थी, किन्तु गोमुख अभी १० कि०मि० दूर था बीच के केवल लालबाबा के आश्रम को छोड़कर और ठहरने का स्थान नहीं था, वह भी लगभग ४ कि० मि० दूर था। पीछे लौटना मुश्किल था, आगे बढ़ना भी। और वहाँ ठहरना तो असंभव था। हिमवर्षा रुकने की कोई आशा प्रतीत नहीं हो रही थी। निश्चित हुआ, लक्ष्य रहेगा किसी तरह लालबाबा आश्रम तक पहुँचा जाए। गोमुख की ओर जाने वाले हम चार ही थे। अन्य कोई यात्री आगे या पीछे नहीं दिख रहा था। मार्ग अत्यन्त संकरा तथा दुष्कर था। कुछ आगे बढ़ने पर तो एक स्थान पर मार्ग अत्यन्त सँकरा हो गया। उसी स्थान

पर ठिठक कर खड़े हो गये क्योंकि यहाँ से दो मार्ग दृष्टिगोचर हो रहे थे, एक दाहिनी ओर जा रहा था तथा दूसरा बायीं ओर जो कुछ बड़ा था एवं बेहतर। मार्गदर्शक तो कोई था नहीं, अब क्या करें? बहुत सोच-विचार कर बायीं ओर के मार्ग को ही चुना। कुछ दूर जाने पर प्रतीत हुआ, हमने चुनाव मे भूल की है क्योंकि रास्ता छोटी-छोटी झाड़ियों से भरपूर था। इस पथ पर आवागमन होने से झाड़ियों का रहना असंभव था, यह सोचकर वापस उस स्थान पर गये जहाँ से मार्ग भूले थे और फिर सँकरे रास्ते से चलना शुरू कर दिया। बाद में पता चला, वह बड़ा रास्ता मिलिट्री का था जो फिलहाल बन्द था। भगवान ने ही यह सद्बुद्धि हमें दी। वरना हमारी हिम समाधि निश्चित थी।

अब भगवान का नाम-स्मरण करने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। अपने-आप अनवरत् हम सभी भगवान का नाम लेते हुए जा रहे थे, यह सोचकर—"कौन जाने, कब पैर फिसल पड़े और १२,००० फीट नीचे तराई में जाकर गिर पड़े?" लकड़ी के पुल को पार करते समय बाल-बाल बच गये। एक जगह अचानक ठिठुर कर मैं रह गया, देखा कि पहला पैर जमीन पर नहीं है, पहाड़ी को मोड़ पर होने से रास्ता नहीं दिखा था। दूसरा पैर उठाते ही खाई में जा गिरता! दिल धड़क उठा। भगवान की कृपा से ही यह जीवन-दान मिला। अब और सावधानी से चलने लगा। जैसे-जैसे हिमवर्षा की गति बढ़ रही थी, हमलोग भी अपनी गति तेज कर रहे थे। पीठ पर लदा हुआ छोटा सा बोझा भी अब कष्ट दे रहा था। बाकी तीनों साथियों को आगे बढ़ने के लिए कहकर मैं विश्राम के लिए एक पेड़ की आड़ में खड़ा हो गया। पीछे पीठ पर से बैग को नीचे उतार कर देखा तो दंग रह गया! लाल रंग की प्लास्टिक की बैग श्वेतवर्ण हो गयी थी तथा उसकी ऊंचाई दुगुनी हो गयी थी! कपास के समान नरम हिम ने टपक-टपक कर यह रूप धारण किया था! अब समझ में आया कि बैग इतनी भारी क्यों लग रही थी। कपड़े ठोक ठाक कर श्रम-साध्य कर फिर से चल पड़ा। अब मैं बिल्कुल अकेला था। बाकी तीनों साथी दूर निकल गये थे। चारों ओर श्वेतवर्ण हिमपर्वत शृंग, श्वेतवर्ण हिमाच्छादित वृक्ष-समूह, गगन से टपकता हुआ श्वेतवर्ण हिम तथा पथ भी श्वेत हिममय! चारों ओर केवल बर्फ के अलावा और कोई साथी नहीं! अद्भुत रोमांचक अनुभव था यह। सोचा—"चन्द्रमा के धरातल पर पहली बार पैर रखने वाले नील आर्मस्ट्रांग को वहाँ अपने को नितान्त अकेला पा कर कैसा रोमांचक अनुभव हुआ होगा!" यही सब सोचते हुए मैं द्रुत गति से बढ़ता गया और कुछ ही देर में तीनों साथियों से जा मिला।

कुछ आगे बढ़ने पर पाया कि एक साथी पीछे छूट गया है। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने पर जब वह नहीं आया तब हमलोग उसकी खोज करने वापस लौटे। कुछ दूर जाने पर उससे भेंट हो गयी। उसकी आपबीती सुनकर हम अवाक् हो गये। उसने बताया, किस प्रकार भगवान की असीम करुणा से उसकी जीवन-रक्षा हुई। एक जगह वह विश्राम के लिए रुक गया था और गलती से उसने अपने दस्ताने निकाल लिये थे। ठंड से उसके हाथ ठिठुर गये, अब न तो वह दस्ताने पहन पा रहा था, न ही अपनी लाठी को पकड़ पा रहा था। फिसलन के कारण बिना लाठी के चलना असंभव था। अतः वह निराश होकर एक पेड़ के नीचे बैठ गया तथा अब मरना अवश्यम्भावी है, यह सोचकर भगवान का नाम लेने लगा। इतने में कहीं से दो साधु आये और उसे डाँट कर कहने लगे—"बैठे क्यों हो? जानते नहीं बर्फ गिरते समय रास्ते में कहीं रुकना नहीं चाहिए? खून जम जाएगा, मर जाओगे चलो, उठो।" तब वह भगवान का स्मरण कर साहस बटोर कर उठा और किसी प्रकार चलना प्रारंभ किया। कुछ ही देर में चलने के कारण पैरों में रक्त संचार हुआ और वह बच गया।

इस प्रकार भगवान का नाम लेते-लेते भगवान की असीम करुणा का अनुभव प्रतिक्षण करते हुए, विचित्र अनुभवों तथा बाधाओं से गुजरते हुए लगभग ११ बजे सुबह जब लालबाबा आश्रम तक पहुँचे, तब हमारे

हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। पहुँचते ही आश्रम के कर्मचारियों ने भीगे हुए कपड़ों तथा सामान को उतार बरामदे में रखने को कहा। वहीं टीन के शेड से बने बरामदे में एक ओर लालबाबा बहुत बड़ी हण्डी में चाय बना रहे थे तथा सभी को प्रेमपूर्वक चाय दे रहे थे। हमलोगों के पहुँचते ही उन्हों ने हमारे हाथों में चाय का एक-एक बड़ा गलास थमा दिया और कहा "पहले जल्दी हाथ गरम करो।" हमलोगों ने भी चाय ले ली और वहीं चूल्हे के चारों ओर अन्य यात्रियों के साथ बैठकर परम तृप्ति के साथ पीने लगे। किसी एक यात्री ने जब चाय लेने से इनकार किया तो लालबाबा ने डाँटते हुए कहा—"अरे यह पीने के लिए नहीं है, हाथ गरम करने के लिए है।" और जबरदस्ती उसके हाथों में ग्लास थमा दिया। लालबाबा के बारे में कुछ सुन रखा था—"प्रेमिक साधु हैं, विशाल हृदय वाले हैं, प्रतिदिन सैंकड़ों यात्रियों के निवास तथा भोजन की व्यवस्था सेवाभाव से निःशुल्क करते हैं, इतनी व्यस्तता के बावजूद सब समय मस्ती में रहते हैं, इत्यादि। अब प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ मिला। चाय समाप्त होते ही हमलोगों को एक कमरे में भेज दिया गया जहाँ ४० से अधिक व्यक्ति एक साथ बैठे हुए थे। बाकी दो कमरों में और भी अधिक व्यक्ति बैठे थे क्योंकि गोमुख से लौटकर आये हुए अथवा वहाँ जाने के लिए पिछले दिन पहुँचे सभी व्यक्ति यहाँ फँस गये थे। इस पूरे इलाके में गंगोत्री से गोमुखतक यात्रियों के ठहरने के लिए यही एक मात्र सहारा है।*

दिनभर उसी कमरे में रहे; वहीं भोजन तथा वहीं विश्राम। रात में भी उसी छोटी जगह में किसी प्रकार पैर सिकुड़कर सोये। दिन पूरा बीता था—एक वैष्णव बाबाजी के उपदेश सुनने में। उनकी बुद्धिमत्तापूर्ण व्याख्यान का मूल तथ्य था—गोमुख का जल रामेश्वर में चढ़ाने से क्या पुण्य होता है; किस प्रकार यह जल वहाँ ले जाना चाहिए, कर्मनाशा नदी तथा नर्मदा नदी मार्ग में पड़ने से क्या हानि हो सकती है, इससे बचने के लिए रामेश्वरम् जाते समय कहाँ कहाँ ट्रेन बदलकर किस पथ से जाना होगा इत्यादि। हाय भगवान! काश, धर्म के नाम पर हम बुद्धि का कुछ बेहतर सदुपयोग करते!

सुबह उठकर कमरे के बाहर आकर अद्भुत दृश्य देखकर स्तंभित रह गये! चारों ओर केवल बर्फ ही बर्फ थी! लालबाबा का आलू का खेत बर्फ का पहाड़ बन गया था, सभी स्थानों पर ४ फीट बर्फ जमी हुई थी, ऊपर छत पर भी बर्फ की मोटी परत थी। बाहर ड्रम में रखा पानी भी जम कर बर्फ हो गया था। सारे दिन और सारी रात की हिमवर्षा ने यह कमाल किया था। अब समझ में आया, पिछली रात मोटे कम्बल को ओढ़कर भी क्यों हमलोग शीत से काँप रहे थे। बाद में पता चला, इस इलाके में और इस मौसम में इतनी हिमवर्षा नहीं हुई थी। सुबह की चाय पिलाकर ही लालबाबा ने आदेश दे दिया सभी को गंगोत्री के लिए प्रस्थान करने के लिए, क्योंकि अब गोमुख जाना संभव नहीं था, वहाँ पर ८ से १० फीट बर्फ होने की संभावना थी। "इतनी दूर इतने कष्टपूर्वक आकर भी माँ गंगा के उद्गम स्थान का दर्शन क्या नहीं होगा? ओह! क्या ही दुर्भाग्य!" यही सब सोचने लगे। किन्तु दूसरा विकल्प भी तो नहीं था!

(अगले अंक में समाप्य)

*गढ़वाल मंडल विकास निगम द्वारा एक अतिथि भवन हाल में बनाया गया है, किन्तु उसमें बहुत कम यात्री ठहर सकते हैं। आरक्षण भी शुल्क देकर बहुत पहले करवाना पड़ता है।
धन्य हैं लालबाबा, जिन्होंने इतने कष्ट पूर्वक यह महान सेवा का काम शुरू किया है!

रामकृष्ण विवेकानन्द भावान्दोलन का राष्ट्र-निर्माण में योगदान (२)

—डॉ० शैल पाण्डेय
हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद, विश्वविद्यालय

समाज के यथार्थ सुधार और राष्ट्र-निर्माण का पथ दिग्दर्शित करते हुए स्वामीजी ने जो कहा है वह हम सभी के लिए मनन का विषय है—प्राच्य और पाश्चात्य देशों के आदर्श अलग-अलग हैं। भारत धर्ममुखी है, अन्तर्मुखी है, पाश्चात्य भूखण्ड बहिर्मुखी है। पाश्चात्य देश यदि धर्म के क्षेत्र में तनिक भी उन्नति करना चाहता है, तो वह समाज की उन्नति के माध्यम से ही वैसा करेगा, और प्राच्य देश यदि सामाजिक क्षेत्र में थोड़ी सी भी शक्ति हासिल करना चाहता है, तो वह धर्म के माध्यम से करेगा।'

धर्म की विकृति, अतीत की उपेक्षा, दृष्टिकोण की संकीर्णता, जनसमूह पर अत्याचार तथा स्त्रियों की उपेक्षा ही स्वामीजी की दृष्टि में भारत की वर्तमान अवनति का कारणस्वरूप हैं। धर्म मनुष्य के हृदय को संप्रसारित करता है, किन्तु ऐसा न करके वह आज व्यक्ति के शोषण का कारण बना हुआ है। वह मनुष्य को नाना तथ्यों पर परिचालित कर रहा है। फलस्वरूप समाज को खंडित कर रहा है। हम खंड-खंड हुए जा रहे हैं। आज हम सभी को पर देख रहे हैं। 'द्वितीयात् वै भयं भवति'— सभी को द्वितीय बनाये जा रहे हैं। धर्म के वास्तविक स्वरूप को विस्मृत कर उसके विकृत रूप को अपनाने से ही हमारी यह दुरवस्था है। कुछ सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वास, छूआछूत अथवा जातिभेद धर्म नहीं है। यथार्थ धर्म के पालन से किसी प्रकार की गिरावट संभव नहीं हैं। यथार्थ धर्म है मनुष्य में निहित दिव्यता को अभिव्यक्ति, चरम सत्य का प्रत्यक्षीकरण। यदि भारत अपने इस धर्म का परित्याग कर देगा, तो तत्काल इसका अंत हो जाएगा। क्योंकि धर्म ही इसका प्राण केन्द्र है। शताब्दियों से धर्म ही इसके सांस्कृतिक जीवन का प्रमुख आधार रहा है। धर्म के पथ का अनुसरण करना ही हमारे जीवन का मार्ग है, हमारी उन्नति का मार्ग है, और हमारे कल्याण का मार्ग भी यही है।

इसी प्रकार अपने गरिमामय अतीत की उपेक्षा कर पाश्चात्य आदर्शों के पीछे दौड़ना स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचायक नहीं है। भारत की अवनति इसलिए नहीं हुई कि हमारे पूर्व-पुरुषों के नियम एवं आचार-व्यवहार खराब थे, वरन् उसकी अवनति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार व्यवहारों को उनकी न्यायसंगत। परिणति तक नहीं ले जाने दिया गया अतः हम अपने अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगे, हमारा भविष्य उतना ही उज्वल होगा, और जो भी इस अतीत के बारे में प्रत्येक को विज्ञ करने की चेष्टा करेगा वह स्वजाति का चरम हितकारी होगा। वे कहते हैं— जहाँ तक हो सके अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरंतन निर्झर वह रहा है, आकंठ उसका जल पीओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ।

भारत के पतन और दारिद्र्य-दुःख का प्रधान कारण दृष्टिकोण की संकीर्णता रही है। विस्तार ही जीवन है और संकोच ही मृत्यु। घोंघे की तरह अपना सर्वांग समेट कर हमने अपना कार्यक्षेत्र संकुचित कर लिया था। तथा आर्येतर दूसरी मानव-जातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तृष्णा थी, अपने जीवनप्रद सत्य-रत्नों का भंडार नहीं खोला था। दूसरों से घृणा की नींव पर आधारित जाति प्रथा की दीवार खड़ी करना भी भारत की वर्त्तमान अवनति के मूल में रहा।

देश में सर्वत्र परिव्रजन के फलस्वरूप स्वामीजी ने जनता की दुरवस्था को देखा था और उन्हें लगा था, कि भारतवर्ष के सभी अनर्थों को जड़ जनसाधारण की गरीबी है। जब तक गरीबों की अवस्था में सुधार नहीं होता; भारत के नव-निर्माण की कोई आशा नहीं की जा सकती। उनकी दृष्टि में हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जन-समुदाय की उपेक्षा है। उन्होंने कहा—'भारत में दो बड़ी बुरी बातें हैं—स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जातिभेद द्वारा पीसना।' वेदांत सभी में एक ही चेतन सत्ता के अस्तित्व की घोषणा करता है। फिर भी समाज में स्त्री पुरुष की स्थिति में इतने अंतर को देखकर उनका हृदय व्यथित हो उठता है। स्त्रियों के उन्नयन के बिना उन्नति का दूसरा कोई मार्ग उन्हें दिखाई नहीं देता। यह बड़ी बिडंबना ही है कि 'पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है जो हिन्दू-धर्म के समान इतने उच्च स्वर में मानवता के गौरव का उपदेश करता हो और पृथ्वी पर ऐसा भी कोई धर्म नहीं है जो हिन्दू-धर्म के समान गरीबों और नीची जाति वालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। दरिद्रों, दलितों और दुखियों के लिए उनकी पीड़ादायक अनुभूति और प्राणपण प्रयत्न ही था, जिसने अंततः भारत के नव-निर्माण के लिए आंदोलन का रूप ले लिया। वे उद्घोष कर उठते हैं—'हमारा संघ दीन-हीन, दरिद्र, निरक्षर किसान तथा श्रमिक समाज के लिए है और उनके लिए सब कुछ करने के बाद जब समय बचेगा, केवल तब कुलीनों की बारी आएगी।'

उनके विचार से जब तक भारत की जनता को एक बार पुनः अच्छी शिक्षा, अच्छा भोजन तथा अच्छी देखभाल नहीं प्रदान की जाती है तब तक राजनीति का कोई परिमाण किसी काम का नहीं है। अगर हम भारत को नया जीवन प्रदान करना चाहते हैं तो हमें उसके लिए कार्य करना होगा। हमें पिछड़े हुए लोगों को सांस्कृतिक स्तर पर उठाना होगा। ऊँची जातियों एवं धनी वर्गों को इन पिछड़े और दरिद्र लोगों पर किये गये अपने दुर्व्यवहार तथा अत्याचार को समाप्त करना होगा और उनकी सेवा कर अपने पापों का प्रायश्चित करना होगा। एकमात्र यही इस के पुनर्निर्माण में हमारी मदद करेगा। हमें उनको शिक्षा एवं संस्कृति प्रदान करनी चाहिए, उनमें अपनी आध्यात्मिक यथार्थताओं को फैलाना चाहिए तथा कृषि, कुटीर उद्योग आदि के आधुनिक तरीकों को लागू कर उनके आर्थिक स्तर को ऊपर उठाना चाहिए। भारत की वर्तमान अवस्था को ध्यान में रखते हुए देश के प्रत्येक हिस्से में समाज के सभी स्तर तक श्रीरामकृष्ण के सर्वव्यापक सन्देश को फैलाना और भाग्यहीन, पिछड़े तथा जनजातीय लोगों का ऊपर उठाना, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से उन्हें संपन्न करना तथा सभी प्रकार की स्वार्थपरता, जो संपूर्ण राष्ट्र के विनाश के लिए देश मे हावी है, को दूर करने के लिए, समाज में आदर्श एवं नैतिक सिद्धांतों की पुनर्स्थापना करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

जातीय-जीवन में अवनति के लक्षण उन्हें सांस्कृतिक दुर्बलता, जड़ता, स्वार्थपरता, आत्म-अविश्वास, आज्ञाकारिता के अभाव, सांगठनिक क्षमता के अभाव, व्यावसायिक गैर ईमानदारी तथा प्रेम के अभाव रूप में दृष्टिगत होते हैं।

आज समाज में फैली हुई सांस्कृतिक नास्तिकता और धर्मोन्माद इन दो खतरों से वे हमें सावधान रहने की सलाह देते हैं। हमारे एक-तिहाई दुःखों का कारण वे हमारी शारीरिक दुर्बलता को मानते हैं। हमारे युवकों को पहले मजबूत होना होगा, धर्म की बारी बाद में आएगी। वे कहते है—"जब तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों पर दृढ़ होगा और तुम अपने को मनुष्य के रूप में अनुभव करोगे, तभी तुम उपनिषदों को और आत्मा की महानता को अच्छी तरह समझ पाओगे।"

उन्होंने बड़े ही खेद के साथ कहा था कि "आजकल यदि भारत में सबसे बड़ा पाप अपना प्रभुत्व फैलाए हुए है, तो वह है – आज्ञापालन का अभाव। सभी शासन करना चाहते हैं, शासन मानने को कोई भी तैयार नहीं। इसका प्रधान कारण है हमारे यहाँ के पुराने ब्रह्मचर्य व्रत पालन के नियमों का लोप हो जाना।"

हम भारतवासी तोते की तरह बातें करना तो खूब जानते हैं, पर कभी उन पर अमल नहीं करते। भाषण-बाजी और निष्क्रियता हमारी आदत हो गयी है। ईर्ष्या तो हमारे दास सुलभ जातीय चरित्र का धब्बा है। हम आलसी, हृदयहीन और स्वार्थी हैं। हम पारस्परिक एकता नहीं स्थापित कर सकते। हममें संगठित होकर कार्य संचालन करने की शक्ति का पूर्णतः अभाव है। मिलजुल कर कार्य करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है, जबकि आज का युग संस्थाओं और सांघिक प्रयास का युग है। कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र दूसरों से घृणा करके जीवित नही रह सकता।

उनकी दृष्टि में संसार का इतिहास उन थोड़े से व्यक्तियों की इतिहास है, जिनमें आत्मा-विश्वास था। यह विश्वास अंतःस्थित देवत्व को ललकार कर प्रकट कर देता है। विश्वास, अपने आप पर विश्वास ही उन्नति का एकमात्र उपाय है। आज हमें अदम्य इच्छा-शक्ति की आवश्यकता है और इस शक्ति को प्राप्त करने का प्रबल उपाय है – उपनिषदों पर विश्वास करना और यह विश्वास करना कि मैं आत्मा हूँ। 'उपनिषदों में ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी बना सकते हैं।

राष्ट्र की हैसियत से आज हमारा व्यक्तित्व खो गया है। राष्ट्र को उसके खोये हुए व्यक्तित्व को प्राप्त करना है और जनसमुदाय को उठाना है। भारत को पुनर्जीवित करने के लिए हमें जन समूह के लिए काम करना होगा। कोई भी राजनीति तब तक प्रभावी नहीं होगी, जब तक भारत का जन समुदाय एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित और सुपालित नहीं होता।

भारत के इस नव-निर्माण का यह मतलब नहीं है कि उच्च वर्ग के सुसंस्कृत जाति के लोगों को अछूत के स्तर तक नीचे खींच कर गिरा दिया जाय। बल्कि यह कि अछूत को अत्यंत सुसंस्कृत व्यक्ति के स्तर तक ऊपर उठाया जाए। मुख्य बात यह है कि लोगों को आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक इन चारों क्षेत्रों में उच्चत्तर धरातल पर उठाना है। इन सबमें आर्थिक उन्नति सबसे जरूरी है; क्योंकि जैसा श्रीरामकृष्ण कहा करते थे 'भूखे पेट को धर्म नहीं रुचता।'

इस कार्य के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है मनुष्य की, चरित्रवान मनुष्य की, ऐसा मनुष्य जो दूसरों के हित के लिए अपना सबकुछ बलिदान कर दे। जहाँ चरित्र है, वहाँ कोई भी काम सफल होगा। चरित्र संपन्न व्यक्ति ईर्ष्या और घृणा त्यागने में तथा एक संघ के रूप में एक जुट होकर प्रयत्न करने में समर्थ होते हैं और इस चरित्र का निर्माण शिक्षा के द्वारा ही संभव है। इसे देश की शिक्षाप्रणाली का एक अंग बना देना होगा। पर दुर्भाग्य की बात है कि इसकी उपेक्षा हो रही है। आज शिक्षा में हम चरित्र पर कोई बल नहीं दे पाते और न इसकी चेष्टा की जाती है कि विद्यार्थी तथा अन्य लोग भारतीय संस्कृति को समझें और अपनावें। हमारी शिक्षा वस्तुतः शिक्षा नाम के ही योग्य नहीं हैं। वह निषेधात्मक है। शिक्षा-प्रणाली में नैतिकता या धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है। हमारे वर्तमान विश्वविद्यालय एक भी मौलिक भाव संपन्न व्यक्ति उत्पन्न नहीं कर सकते। वे परीक्षा लेने वाली संस्थाएँ मात्र बन कर रह गये है। साधारण जनता को जागृति और उसके कल्याण के लिए स्वार्थ-त्याग की मनोवृत्ति का हममें थोड़ा भी विकास नहीं हुआ है।

स्वामीजी की दृष्टि में शिक्षा का अर्थ मनुष्य में निहित पूर्णता को व्यक्त करना है। जिस संयम के द्वारा इच्छाशक्ति का प्रवाह और विकास वश में लाया जाता है और वह फलदायक होता है वह शिक्षा कहलाती है। वे कहते हैं—"जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र-बल परहित भावना या सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा

जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है, वही है शिक्षा। शिक्षा का प्रथम कर्तव्य है भारत के हर बच्चे को देश का सच्चा नागरिक बना देना। यह तभी संभव है जब उसे इस प्राचीन संस्कृति में पगाया जाए, जिसके लिए भारत जीवित रहा है। पर खेद है कि ऐसा न कर बच्चों को बिल्कुल उल्टी बातें सिखायी जा रही हैं। मानव-मूल्यों पर कोई बल नहीं दिया जा रहा है। आज हम एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र हैं, जिसका तात्पर्य यह लिया जाता है कि एक ऐसा राष्ट्र जिसमें कोई धर्म नहीं। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र का सही अर्थ यह है कि वह नागरिक के धर्म की ओर दृष्टिपात नहीं करेगा। किन्तु उसका अर्थ एक धर्महीन राष्ट्र मानकर अर्थ का अनर्थ ही किया गया है। धर्म के बिना ये मानव-मूल्य, जिनकी बदौलत कोई राष्ट्र महान बनता है, पैदा नहीं होंगे। धर्म ही मनुष्य का, आत्मा का गठन करता है, और आत्म-शक्ति को प्रबुद्ध करता है। ऐसे धर्म के बिना हम महान नहीं बन सकते। धर्मशिक्षा, चरित्र गठन तथा ब्रह्मचर्य-पालन इन्हीं के लिए तो शिक्षा की आवश्यकता है। हमारे सांस्कृतिक आदर्शों को जब तक शिक्षा प्रणाली में बैठाया नहीं जाएगा, तब तक शिक्षा अनुपयोगी ही रहेगी। शिक्षा-प्रणाली का मूलभूत ध्येय विद्यार्थियों को इस प्रकार शिक्षित करने में निहित है, जिससे वे अपने देश की संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि बन सकें। पर इस विशिष्ट पहलू के अभाव में हमारी शिक्षा-पद्धति एकदम सफल है। वह मात्र कुछ बौद्धिक पशुओं को पैदा करती है, जो समाज में एक दूसरे के साथ लड़ने-भिड़ने में ही अपनी सारी शक्ति नष्ट कर देते हैं। समूचे देश में आज यही स्थिति है, और यह हमारी शिक्षा का ही फल है।

आज की शिक्षा-प्रणाली का दोष यह है कि उसका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है, वह बच्चे को विशिष्ट क्षेत्र में तो विशेषज्ञ बना देती है पर उसे वह उदार शिक्षा प्रदान नहीं करती जिसके बल पर वह सही अर्थों में मनुष्य बन सके और अपने अतीत की सांस्कृतिक विरासत का अधिकारी कहला सके। हमारी आधुनिक शिक्षा-पद्धति में दूसरा दोष यह है कि उसमें ज्ञान प्राप्ति के औजार-स्वरूप मनोयंत्र के प्रशिक्षण पर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में मन के संस्कार, उसके नियंत्रण और प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। ध्यान, एकाग्रता और नैतिक पवित्रता के अभ्यास द्वारा उसे ज्ञान–प्राप्ति का उपयुक्त यंत्र बनाया जाता था।

हमलोग आज भी बहुत कुछ उसी योरोपीय शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं, जो हम पर अंग्रेजों के द्वारा लादी गयी थी। वह उनकी पश्चिमी सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में भले ही उपयोगी रही हो पर हमारे लिए तो वह एकदम उपयोगी नहीं है। आज शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यों तथा राष्ट्र की महत्वाकांक्षाओं के बीच किसी प्रकार का ताल मेल नहीं है। शताब्दियों से चरम सत्य का साक्षात्कार ही राष्ट्र की महात्वाकांक्षा रही है। जब हम जीवन में इस चरम सत्य का साक्षात्कार करने में समर्थ होते हैं, तब हम शिक्षा के लक्ष्य को भी पा लेते हैं। इस दृष्टि से देखें तो श्रीरामकृष्ण भले ही निरक्षर थे, पर पूरी तरह शिक्षित थे, जबकि हम साक्षर तो हैं, लेकिन अशिक्षित हैं। वर्तमान शिक्षा पद्धति के इसी पक्ष पर बल देने के लिए श्रीरामकृष्ण ने वह ग्रहण करने से इनकार कर दिया था, जिसे आधुनिक अर्थों में हम शिक्षा कहते हैं।

आज के राजनैतिक दल विद्यार्थियों को उनके शिक्षण-संस्थानों से निकाल कर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए लड़ने में लगाते हैं, जिससे राजनैतिक जगत में उनका वर्चस्व बना रहे। यदि हम इस देश को एक बार फिर से महान बनाना चाहते हैं, तो यह सब बंद करना होगा। जबतक वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को चरित्रवान पुरुषों के निर्माण में सक्षम नहीं बनाया जाता–ऐसे लोग, जो देश की समस्याओं को सुन्दर रूप में सुलझा सकें' तब तक देश के लिए कोई आशा नहीं है।

□

बुद्धि योग (२)

—स्वामी वेदान्तानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

दूसरी ओर, जो व्यक्ति इन्द्रियों को अपने वश में रखने में समर्थ नहीं है, वह उपयुक्त समय पर शास्त्र की शिक्षा तथा ज्ञानियों से प्राप्त उपदेशों को भूल जाता है। इस प्रकार के असंयत व्यक्ति के लिए भावना अर्थात् ध्यान करना संभव नहीं होता। जो ईश्वर अथवा आत्मा के स्वरूप का ध्यान करने में असमर्थ हैं उनके मन में शान्ति नहीं होती। प्रकृत सुख की प्राप्ति, मुक्ति के आनन्द का अनुभव कर पाना उनके जीवन में संभव नहीं होता।

गीता के दूसरे अध्याय के ११ से ३०वें श्लोक तक श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मा के स्वरूप के विषय में उपदेश दिया है। बाद में २/३९ से कर्मयोगी की बातें बतायी हैं। अर्जुन तय नही कर पाते हैं कि वे किस मार्ग का अवलम्बन करेंगे। ज्ञान के अनुशीलन एवं कर्म के अनुष्ठान में किसे ग्रहण करेंगे। तीसरे अध्याय के १-२ श्लोकों में अर्जुन अपना संदेह प्रकट करते हुए कहा, 'आप की बात सुनकर लगता है कि आत्मनिष्ठा कर्मानुष्ठान से उत्कृष्ट है। तब आप मुझे नर-हत्या के समान भयंकर युद्ध करने के लिए क्यों प्रेरित करते हैं? आप ज्ञान के अनुशीलन की प्रशंसा करने के बाद ही फिर कर्म करने को प्रोत्साहित करते हैं। इसके कारण मेरी बुद्धि (विचारशक्ति) भ्रमित हो गयी है। अतः किस मार्ग का अवलम्बन करने से मेरा कल्याण होगा, इसे निश्चित कर मुझे कहिए। (३/१-२)

अधिकतर लोगों में कार्य करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। उनसे यदि कहा जाय कि आत्मा कार्य नहीं करती, कर्म का फल भी नहीं भोगती, तो कार्य के प्रति उनकी श्रद्धा कम हो जायगी। और, आत्मविचार में मनोनिवेश करने की योग्यता नहीं रहने पर उनका जीवन निष्फल हो जाता है। इसीलिए ज्ञानी व्यक्ति का कर्तव्य है कि उन लोगों की बुद्धि को चंचल नहीं होने दें, किन्तु, स्वयं निष्काम कर्म में लगे रहकर सामान्य लोगों को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करें। (३/२६)

काम जिस प्रकार मनुष्य की इन्द्रियों, मन और बुद्धि में आश्रय ग्रहण करता है तथा ज्ञान के प्रकाश में बाधा उत्पन्न करता है, इसका उल्लेख ३/३९-४० श्लोक में किया गया है। मनुष्य जब तक स्वयं को स्थूल शरीर, आँख कान आदि पंच ज्ञानेन्द्रिय, मन एवं बुद्धि से चेतन सत्ता मानता है, तब तक वह काम के प्रभाव से मुक्त होने की चेष्टा नहीं करता। जिस विचार के द्वारा मनुष्य काम के प्रभाव से मुक्त हो सकता है, उस विचार का वर्णन तीसरे अध्याय के अंतिम दो श्लोकों में हुआ है। उनमें कहा गया है कि रूप रस आदि विषयों का अनुभव ज्ञानेन्द्रियों से होता है। इसलिए वे स्थूल देह से श्रेष्ठ हैं। निश्चय ही ये स्थूल शरीर से अलग हैं। ये इन्द्रियाँ मन के द्वारा संचालित होती हैं। अतः मन इनसे श्रेष्ठ है। 'देखूँ या नहीं देखूँ', 'सुनूँ या नहीं सुनूँ', इस प्रकार संकल्प-विकल्प का जन्म होता है। इसके बाद इन्द्रियाँ विषय को ग्रहण करने में प्रवृत्त या निवृत्त होती हैं। किस विषय को ग्रहण करना उचित या अनुचित है, इसका निर्णय बुद्धि करती है। अतः मन से बुद्धि श्रेष्ठ है। और इन सब के भीतर और इन सब से भिन्न जो चेतन सत्ता वर्तमान रहती है उसे आत्मा कहा जाता है। यह आत्मा विकार से रहित एवं बुद्धि की भी शासिका होती है। मैं इन्द्रिय, मन, बुद्धि से भिन्न हूँ, यह विश्वास जब प्रबल और दृढ़ हो जाता है, केवल

नहीं हो पाता । तभी मनुष्य किसी कामना के वशीभूत नहीं हो पाता । किन्तु सर्वदा वह आनन्द और शान्ति का अनुभव करता है। (३/४२-४३)

कौन-सा कार्य करना उचित है, उचित होने पर भी उसे किस भाव से करना उचित है; फिर कौन-सा कार्य अनुचित है– इन सब विषयों का सही-सही निर्धारण करना उचित नहीं है, अनुचित लगने पर भी क्यों करने के लिए तीक्ष्ण बुद्धि होने से ही नहीं होता । किसी व्यक्ति को सांसारिक अनेक विषयों में बुद्धिमान होने पर भी किसी आध्यात्मिक विषय की धारण करने में असमर्थ देखा जाता है ।

४/१५वें श्लोक में यथार्थ बुद्धिमान व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन किया गया है । 'आत्मा कोई कार्य नहीं करती,' जिसे इस प्रकार का अनुभव हुआ है, उसको देह और इन्द्रियों के अनेक कार्यों में लिप्त रहने पर भी वह स्वयं को अकर्ता मानकर सर्वदा शान्त और स्थिर रहता है। दूसरी ओर जो व्यक्ति परिश्रम के डर से कार्य-कर्म को छोड़कर स्वयं को ज्ञानी मानता है उसका जबर्दस्ती कर्म-त्याग भी एक प्रकार का कर्म ही है। इस प्रकार दोनों श्रेणियों के व्यक्तियों के कार्यों की भिन्नता समझकर तथा इस ज्ञान को अपने जीवन में कार्य रूप में परिणत करने में जो समर्थ होता है वही सही अर्थ में बुद्धिमान व्यक्ति है। जो सदैव आत्मचिन्तन या ईश्वर चिन्तन में लगा रहता है वह योगी है। जब जिस कार्य को करने की जरूरत होती है तब वह उस कार्य को अनासक्त भाव से और सुन्दर तरीके से सम्पन्न करता है। अतः उसे समस्त कार्य करनेवाला कहा जाता है।

५/११वें श्लोक में बुद्धि शब्द का अर्थ विचार-सामर्थ्य प्रतीत होता है । इस श्लोक में कहा गया है कि कर्मों के द्वारा जो ईश्वर को प्राप्त करने के इच्छुक हैं वे कर्म को चित्तशुद्धि के उपाय के रूप में ग्रहण करेंगे। वे शरीर मन बुद्धि से ईश्वर की आराधना के रूप में सारे कार्य करेंगे। देह, इन्द्रियाँ आदि किसी विषय में जिससे आसक्त न हो सकें, इस ओर वे सदा सतर्क रहेंगे ।

५/१६वें श्लोक में शब्द का निश्चयात्मिका बुद्धि के अर्थ में व्यवहार हुआ है। आत्मन् शब्द मन के लिए प्रयुक्त हुआ लगता है । इस श्लोक में कहा गया है कि जिन लोगों का मन, बुद्धि ईश्वर के चिन्तन में रत रहता है, जिनके मन की गति सर्वदा ईश्वरोन्मुखी रहती है, जिन्होंने एकमात्र ईश्वर को अपने आश्रय के रूप में ग्रहण किया है, उनके मन की सारी मलिनताएँ ईश्वर की कृपा से मिट जाती हैं । वे जड़ देहविशिष्ट जीव मात्र नहीं, बल्कि चैतन्य स्वरूप आत्मा हैं, ईश्वर के साथ उनका सनातन सम्बन्ध है—ऐसा उन्हें अनुभव होता है । उनलोगों का पुनः जन्म नहीं होता।

६/९वें श्लोक में व्यवहृत समबुद्धि शब्द का अर्थ है— जिस व्यक्ति के हृदय में किसी के भी प्रति आसक्ति या विद्वेष नहीं है, जो सम्पूर्ण रूप से पक्षपात से रहित हैं। इस श्लोक में विभिन्न स्वभाव के व्यक्तियों का उल्लेख है। दूसरों की भलाई करने की कामना करना जिसका स्वभाव है वह सुहृत् है, स्नेह के वशीभूत होकर जो उपकार करता है वह मित्र है और विना कारण के दूसरों का अहित करना जिसका स्वभाव है वह हिंसा करनेवाला व्यक्ति है। जो विवाद करनेवाले दो व्यक्तियों या दो दलों में दोनों की उपेक्षा करता है उसे उदासीन कहा जाता है। अहित करने तथा अप्रिय बात बोलने के लिए जिसके मन में विद्वेष उत्पन्न हो उस व्यक्ति को द्वेषी कहा जाता है। जो दो पक्षों के बीच उठे विवाद का निर्णय करता है उसे मध्यस्थ कहते हैं। जिसमें आत्मीयता है उसे बन्धु कहते हैं। सदाचार सम्पन्न व्यक्ति को साधु कहते हैं एवं दुराचारी व्यक्ति को पापी कहते हैं। जो सम्बुद्धि व्यक्ति उपर्युक्त विभिन्न स्वभाव के लोगों में से किसी के भी प्रति आसक्त नहीं होता, या घृणा भी नहीं करता उसकी गणना श्रेष्ठ मनुष्य के रूप में होती है ।

ध्यान और अभ्यास के फलस्वरूप जब चिन्तन पूरी तरह विषयों के चिन्तन से मुक्त हो जाता है तब योगी जिस सुख का अनुभव करता है उसे शब्दों में नहीं कहा

जा सकता। किसी इन्द्रिय के द्वारा उस प्रकार के सुख का अनुभव करना संभव नहीं होता। योगी के द्वारा अनुभव किये जाने वाले उस सुख को 'बुद्धि ग्राह्यम्' विशेषण दिया गया है। ६/२१ वें श्लोक में 'बुद्धि' का तात्पर्य है सम्पूर्ण रूप से इन्द्रिय ग्राह्य विषयों के साथ सम्बन्ध रहित शुद्ध बुद्धि। इस प्रकार की शुद्ध बुद्धि को आत्मा कहा जाता है।

६/२५वें श्लोक में व्यहृत 'बुद्धय' शब्द का अर्थ है—निश्चयात्मिका बुद्धि के द्वारा।

६/४३ वे श्लोक में 'बुद्धि संयोग' शब्द का अर्थ है (पूर्व जन्म में) अनुभूत आत्मस्वरूप विषयिणी बुद्धि का प्रकाश।

७/१ श्लोक में बुद्धि शब्द का अर्थ है—विचार से उत्पन्न ज्ञान, 'बुद्धिमताम्' शब्द का अर्थ है—ज्ञानवान् लोग।

७/२४वें श्लोक के 'अबुद्धय:' शब्द का अर्थ है—अल्पबुद्धि सम्पन्न लोग—जो किसी विषय का विशेष रूप से विचार करने में असमर्थ हैं।

१०/४ श्लोक के 'बुद्धि:' शब्द का अर्थ है कौन ग्रहण करने योग्य तथा कौन त्याग करने योग्य विषय है, उसका निर्धारण करने की क्षमता।

१०/१०वें श्लोक बुद्धियोग शब्द का अर्थ है—शुद्ध विचार बुद्धि रूप उपाय। इस बुद्धियोग या शुद्ध मन की एकाग्रता प्राप्त होने पर सर्वत्र ईश्वर के प्रकाश का अनुभव होता है।

१८/४९वें श्लोक के 'असक्त बुद्धि:' शब्द का अर्थ है, जिसकी बुद्धि कभी भी रूप रस आदि विषयों के प्रति आकृष्ट नहीं होती। स्वयं को देह, इन्द्रिय से पूर्णत: भिन्न चेतन आनन्द सत्ता अनुभव कर पाने पर, विषयों के बीच रहने पर भी विषयों में आसक्त नहीं होना संभव हो सकता है।

१८/५१वें श्लोक में 'बुद्धया-विशुद्धया' शब्द का अर्थ है—विषयों की आसक्ति से रहित निर्मल बुद्धि।

गीता में १८वें अध्याय के ५७वें श्लोक में 'बुद्धियोग' शब्द का तीसरी बार प्रयोग हुआ है। योग है ईश्वर के साथ युक्त रहने का एक उपाय। बुद्धि के निर्मल नहीं होने पर सदैव ईश्वर के चिन्तन में मन लगाना सभव नहीं होता। इस श्लोक में ज्ञानी या भक्त सभी कार्यों का त्याग करते हैं, ऐसी बात नहीं कही गयी है। सभी कार्यों का फल ईश्वर को समर्पित कर ईश्वर के चिन्तन को कभी भी नहीं भूलने का उपदेश इस श्लोक में दिया गया है।

■

जिसने हाथ, पैर और वाणी को संयम में रखा है, वही सर्वोत्तम संयमी है। मैं उसी को भिक्षु कहता हूँ, जो अपने में मस्त है, जो संयत है, एकांतसेवी है और संतुष्ट है।

× × ×

जिस प्रकार सांप के फन से हम अपना पैर दूर रखते हैं, उसी प्रकार जो कामोपभोग से दूर रहता है वह स्मृतिमान पुरुष इस विष-भरी तृष्णा का त्याग करके निर्वाण-पथ की ओर अग्रसर होता है।

—भगवान बुद्ध

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

उसके बाद नरेन विनयपूर्वक बोले—"अच्छा! तू तो रातदिन उनके पास ही रहता है—वे क्या सारे समय ऐसे ही भावविभोर रहते हैं? रात को भी क्या वे सोते नहीं?"

लाटू—'मैं रातदिन उनके साथ साथ हूँ, पर मैंने तो कभी भी उनमें कुछ बेचाल नहीं देखा, और वे कभी किसी को जादू तो नहीं दिखाते। आपने जो सुना है, सब गलत सुना है। उनके साथ मैं इतने दिनों तक रहा, पर मैंने तो कभी नहीं सुना कि वे 'पगला बाह्मन' हैं। बल्कि आजकल तो बहुत से बड़े-बड़े लोग उनके पास जा रहे हैं। उस दिन केशव बाबू गये थे, और एक दिन वे जो एक दाढ़ी वाले बाबू हैं न, वे भी गये थे। केशव बाबू के साथ उस दिन उनकी कितनी सब बातें हुईं।

नरेन—क्या बातें हुईं रे?

लाटू—उस दिन उन्होंने केशव बाबू को ध्यान-धारणा के बारे मे कितनी हो बातें कहीं! आपकी कितनी बड़ाई की! केशव बाबू ने भी कितना कुछ कहा।

इस बात को यहीं दबा कर नरेन ने पुनः लाटू से पूछा—"क्या रे! क्या वहाँ राखाल जाया करता है?"

लाटू—जाता है। यही क्या, दो-एक रात वहीं ठहर भी जाता है। ठाकुर उसे बड़ा प्यार करते हैं। अपने पास बैठाकर कितना खिलाते हैं, कितना व्यंग-विनोद करते हैं। उस दिन वे उन्हें माताजी के पास ले गये और बोले, 'यह लो जी, तुम्हारा बेटा आया है।' माँ को बड़ा ही आनन्द हुआ। हमलोगों को उन्होंने खूब सन्देश खिलाये।

नरेन—राखाल को उनका बेटा कहा?

लाटू—सच बोलता हूँ, यही सुना था।

हमने यहाँ लाटू और नरेन के वार्तालाप का संक्षेपन कर लिया है। इसका कुछ अंश हमने श्रीयुत महेन्द्रनाथ दत्त से सुना है और इसे ग्रन्थोपयोगी बना लिया है।

उनका सेवकजीवन अभिव्यक्त करने के लिए हम एक और घटना ८२ ई० का भी उल्लेख करेंगे—

एक दिन दोपहर का भोजन हो जाने के पश्चात् ठाकुर ने अपने मानसपुत्र राखाल को पान लगा लाने को कहा—"अरे राखाल! पान तो लगे नहीं हैं, थोड़े से पान लगा ला न।" ठाकुर के इस आदेश पर राखाल ने कहा—'पान लगाना तो मैं नहीं जानता!'

राखाल की बात सुनकर ठाकुर बोले—"यह क्या रे, पान लगा, इसमें जानने न जानने का क्या है? पान लगाना भी क्या सीखना पड़ता है रे? जा पान लगाकर ले आ।" इस पर भी राखाल को अग्रसर न होते देखकर सेवक लाटू मन ही मन बड़े नाराज हुए। परन्तु लाटू की नाराजगी पर बिलकुल भी ध्यान न देते हुए राखाल लगातार ठाकुर के आदेश की अवहेलना करते रहे।

इस पर लाटू से न रहा गया; ठाकुर के सामने ही उसने राखाल को कहा—"यह क्या राखाल बाबू ! उनके सामने इस प्रकार बोलना चाहिए क्या ? आप उनका आदेश नहीं सुन रहे हैं और उनकी बातों के ऊपर जवाब दे रहे हैं—यह आपका कैसा व्यवहार है ?" लाटू की गरम बातों पर राखाल भी भड़क उठे और चिल्लाकर बोले—"तुझे गरज पड़ी हो तो तू लगाकर ले आ न, मैं नहीं कर सकू गा। जीवन में मैंने कभी वह कार्य नहीं किया है, आज उनके कहने पर मैं पान लगाऊँगा भला !"

राखाल के इतना बोलते ही लाटू सचमुच क्रोधित हो उठा और आधी हिन्दी एवं आधी बंगाली की मिश्रित भाषा में बहुत कुछ कहने लगा।

यह सब देखकर ठाकुर को बड़ा मजा आया और वे आनन्द में हिस्सा बँटाने के लिए अपने भतीजे रामलाल को पुकारने लगे—"अरे रामलाल ! राखाल और लाटू का युद्ध देखना हो तो आ जा।"

ठाकुर की पुकार सुनकर रामलाल वहाँ आ पहुँचे। तब भी दोनों के बीच वाक्युद्ध जारी था। रामलाल को देखकर ठाकुर ने रस लेते हुए पूछा—"बोल तो इनमें बड़ा भक्त कौन है—राखाल या लेटो ?" ठाकुर का विनोद समझकर रामलाल ने हँसते हुए कहा—"मुझे तो लगता है कि राखाल ही बड़ा भक्त है।"

रामलाल दादा की उक्ति सुनकर लाटू क्रोधपूर्वक कहने लगा—"हाँ, उनका आदेश नहीं मानते और वे ही बड़े भारी भक्त हैं !"

लाटू की नाराजगी देखकर ठाकुर और भी हँसने लगे, तथा रामलाल के प्रति बोले—"ठीक कहता है रामलाल ! राखाल में ही अधिक भक्ति है। देख न, राखाल कैसे हँस-हँसकर बातें कर रहा है और (लाटू की ओर संकेत कर) वह देख, कैसा आपे से बाहर हो गया है ! जिनमें ज्यादा भक्ति है वह क्या इसके (अपनी ओर इंगित कर) सामने क्रोध दिखा सकता है ? क्रोध तो चाण्डाल होता है—क्रोध से श्रद्धा-भक्ति सब छू-मन्तर हो जाती है।"

ठाकुर की बात सुनकर लाटू की वैसी ही अवस्था हो गयी मानो जोंक के मुँह पर नमक पड़ गया हो। क्रोध, लज्जा और अभिमान से लाटू के नेत्रों में अश्रु छलछला आये और वह कहने लगा—"अब मैं आपके सामने कभी क्रोध नहीं दिखाऊँगा। मुझे इस बार माफ कर दीजिए।"

लाटू की आँख में जल देखकर ठाकुर उन्हें आश्वस्त करने के लिए बोले—"देख ! राखाल ने ठीक ही कहा है। इसे (अपना शरीर दिखाते हुए) पान खाने की इच्छा हुई थी न ! इसीलिये राखाल उसे टाल सका। इसके भीतर जो हैं, उन्हें यदि पान खाने की इच्छा होती तो राखाल की मजाल थी कि उसे टाल देता ?"

अस्तु। विविध वाद-विवाद के बाद ठाकुर ने लाटू को ही पान लगाने को कहा। यह घटना आद्योपान्त मैंने रामलाल दादा से सुनी है।

परवर्तीकाल में इसी घटना के प्रसंग में लाटू महाराज ने जो कुछ बताया था उसमें ठाकुर की अन्तर्दृष्टि लक्षित होती है।

'जानते हो !... राखाल को राजा* होना था न, इसीलिए वे राखाल से कोई छोट-मोटा कार्य नहीं कराते थे " इसके साथ ही उन्होंने एक और घटना बतायी, वह किस वर्ष की घटना है हमें नहीं मालूम। "एक दिन ठाकुर ने राखाल को तेल मलने को कहा। तेल की शीशी हाथ में लेकर राखाल के मन में क्या हुआ कौन जाने! देखता हूँ कि राखाल बरामदे से नीचे उतर रहा है। सुना ठाकुर कह रहे थे, 'जा न, देखूँ कहाँ जाता है, लौटकर यहीं आना होगा। राखाल सीधा बाहर की ओर जाने लगा, परन्तु फाटक के पास पहुँचते-पहुँचते पता नहीं उसके मन में क्या आया कि तुरन्त दौड़ते

*रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन का अध्यक्ष

हुए ठाकुर के पास जा पहुँचा। राखाल को लौटते देख-कर उन्होंने कहा, 'क्यों रे; जा नहीं सका?' राखाल रोने लगा।"

* * *

श्रीयुक्त प्रतापचन्द्र हाजरा ठाकुर के ही अंचल के निवासी हैं और हाल ही में दक्षिणेश्वर आये हैं। गाँव के लोगों की धर्म के बारे में जैसी धारणा होती है, हाजरा वैसे ही धर्म में विश्वासी हैं। वे पूजा, पाठ और माला जपने को ही धर्म का सर्वस्व कहते थे। जो व्यक्ति पूजा, पाठ, जपमाला, छापा तिलक का व्यवहार नहीं करता था, उसे वे धार्मिक मानने को कतई तैयार नहीं थे। दक्षिणेश्वर में थोड़े दिन बिताने के बाद ही हाजरा को पता चला कि ठाकुर पूजा, पाठ, माला जप, छापा, तिलक आदि कुछ भी नहीं करते। अतः एक दिन वे स्वयं ही अग्रसर होकर ठाकुर को उपदेश देने लगे—"देखो गदाधर! ऐसा करना तो भाई अच्छा नहीं है! ऐसा करने से तो लोग तुम्हें अधिक दिन नहीं मानेंगे। कम से कम लोगों को दिखाने के लिए तो कुछ करो, मेरी तरह और नहीं तो माला ही लेकर जपो। इतने लोग यहाँ आते हैं, तुम्हें माला जपते देखकर वे इतना तो सोचेंगे ही कि तुम थोड़ा साधन-भजन करते हो।"

हाजरा की इस बात पर ठाकुर हँसने लगे और लाटू, हरीश, गोपाल, रामलाल आदि को पुकार कर कहने लगे—"अजी, सुनो तो हाजरा क्या कहता है? मुझे माला जपने को कहता है—मैं तो भाई अब वह सब नहीं कर पाता। वह कहता है—माला नहीं जपते देख-कर लोग तुम्हें मानेंगे नहीं। क्यों जी! हाजरा की बात ठीक है क्या?"

ठाकुर का यह कथन सुनकर सेवकगण हाजरा पर बड़े नाराज हुए। हरीश ने कहा—"उसकी बात छोड़ दीजिए। वह जैसा गँवार है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही है।"

ठाकुर ने हरीश से कहा—"नहीं जी, उसे गँवार-बुद्धि न कहो—माँ ही तो उसके मुख से कहलवा रही हैं।"

हरीश—"आप भी क्या कहते हैं! माँ को भी और आदमी नहीं मिला, जो उन्होंने हाजरा के मुख से आपको बातें सुनायीं।"

ठाकुर—"हाँ जी, माँ ऐसे बताया करती है।"

इतनी सब बातों में 'माँ ऐसे ही बताया करती है' यही बात लाटू के प्राणों में घर कर गयी थी। परवर्ती काल में वे हमारे सामने ये ही बातें दुहराया करते थे।

यहीं पर लाटू महाराज की हाजरा के बारे में परवर्ती काल की धारणा का भी उल्लेख कर लेना चाहता हूँ क्योंकि सम्भव है अन्यत्र उसे बताने का मौका न मिले। लाटू महाराज की धारणानुसार—"हाजरा के मन से टेढ़ापन नहीं गया; वह माला जपते-जपते विषय चिन्तन किया करता था, इसीलिए तो उसकी उन्नति नहीं हुई।" लोरेन भाई को पकड़कर ही हाजरा तर गया। लोरेन के हठ पर ही ठाकुर ने उस पर कृपा की। उनके देहत्याग के पश्चात् उसके मन में ऐसी धारणा जन्मी कि वह एक बड़ा अवतार है, ठाकुर से भी बड़ा।... एक दिन हाजरा के मन में ठाकुर की चरण-सेवा करने की बड़ी इच्छा हुई, परन्तु ठाकुर ने पाँव खींच लिये। यह देखकर हाजरा बड़ा दुःखी हुआ। बाहर जाकर खेद करने लगा। आखिरकार उन्होंने हाजरा को बुला भेजा। केवल उसी एक दिन हाजरा ने ठाकुर की चरणसेवा की थी। एक दिन हाजरा के मन में लोगों को उपदेश देने की इच्छा हुई - उस दिन जो भी लोग दक्षिणेश्वर आये उन सभी को वह बताने लगा, 'वे आज यहाँ नहीं हैं—वहाँ बैठकर क्या होगा? यहाँ आकर दो बातें सुनो।' परन्तु कोई भी उसके पास जाकर नहीं बैठा। एक व्यक्ति बैठने भी जा रहा था तो ठाकुर ने उसे संकेत करके बुला लिया। हाजरा के दुःख की सीमा न थी!...हाजरा के साथ लोरेन भाई की बड़ी पटरी बैठती थी—हाजरा तम्बाकू सजाकर पिलाया करता था। उसके साथ तर्क-वितर्क में लग जाता। लोरेन भाई उसे हँसी में कहते, 'तुम तो देखता हूँ एक बड़े सिद्धपुरुष हो। तुम्हारे समान माला जपते बहुत कम

लोगों को देखा है। तुम्हारी माला भी तो बड़ी अच्छी है—बड़े-बड़े दाने हैं, खूब चमकदार हैं। तुम्हारे समान सिद्धपुरुष दूसरा कौन है ?' यह बात सुनकर हाजरा को बड़ा अहंकार हो गया ; हम लोगों से कहता—'अरे, तुम लोग मेरे को क्या समझोगे ? तुम्हारे लोरेन ने मुझे ठीक समझ लिया है। वे भी नहीं समझ सके।' सुनी उसके अहंकार की बातें ! ऐसा ही मनुष्य साधन पथ से पतित हो जाता है, समझे ?...हाजरा सोऽहं का जप किया करता था, बड़ा तर्क करता था, इसीलिए तो उन्होंने (ठाकुर ने) हम लोगों से कहा था, 'हाजरा यहाँ का मत पलट देना चाहता है; तुम लोग उसके साथ ज्यादा मेल-जोल न रखना। तुम लोगों का भक्ति का घर है, शुष्क ज्ञान की तुम्हें क्या आवश्यकता ?'...एक दिन हाजरा अधर सेन के घर नाचा था, उसी को लेकर लोरेन भाई ने कितना मजा किया था।''

१८८२ ई०। महीना ज्ञात नहीं। ठाकुर लाटू को लेकर बलराम बाबू के घर आये हुए थे। वही उसका (लाटू का) बलराम-मन्दिर में प्रथम आगमन था। बलराम बाबू बहुत कुछ सिखों के समान वेशभूषा धारण करते थे। इसलिये प्रथम दर्शन के समय लाटू ने उन्हें गलत समझ लिया था। उसने एक भक्त को बताया था—''देखो ! ....उन्हें जब पहली बार देखा तो मैं सोच भी नहीं सका था कि वे बंगाली हैं। वे बंगाली लोगों के समान कपड़े नहीं पहनते थे—सिर पर एक पगड़ी बांधते थे, हाथ में एक लाठी रखते थे, और शरीर पर एक बड़ा कुरता रहता था। उनकी लम्बी दाढ़ी थी। वे बड़े दुबले-पतले थे। हम लोगों को हमेशा उनके यहाँ जाना पड़ता था।''

अब हम बलराम बाबू के जीवन की उन घटनाओं का वर्णन करने जा रहे हैं, जो हमें लाटू महाराज ने बतायी थीं। अलग-अलग दिन अलग-अलग बातें सुनने को मिली थीं, हम उन सभी को एकत्र सजाकर यहाँ लिपिबद्ध कर रहे हैं। (क्रमश:)

□

भगवान बुद्ध

—स्वामी विवेकानन्द

(अमेरिका के डिट्राएट नगर में दिया हुआ भाषण)

हर एक धर्म में हम किसी एक प्रकार की साधना को चरम सीमा पर पहुँची हुई पाते हैं। बौद्ध धर्म में निष्काम का भाव अत्यन्त विकसित है। तुम लोग बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म को समझने में भूल न करो। बौद्ध धर्म हमारे सम्प्रदायों में से एक है। भारतीय वर्ण-व्यवस्था, कठिन कर्मकाण्ड एवं दार्शनिक वाद-विवादों से ऊबकर गौतम नामक एक महापुरुष ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। कुछ लोग कहते हैं कि हमारा एक विशेष कुल में जन्म हुआ है और इसलिए हम उन लोगों से श्रेष्ठ हैं, जिनका जन्म ऐसे वंश में नहीं हुआ। भगवान् बुद्ध का इस सिद्धान्त में कोई विश्वास न था—वे इस प्रकार के जाति-भेद के विरोधी थे। और पुरोहित लोग धर्म के नाम पर जो कपटाचरण द्वारा स्वार्थ-सिद्धि करते थे, इसके भी वे घोर विरोधी थे। इसलिए उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जिसमें कामनाओं तथा वासनाओं के लिए स्थान न था। वे दर्शन तथा ईश्वर के सम्बन्ध में सम्पूर्ण अज्ञेयवादी थे।

उनसे कई बार ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये, पर उन्होंने सदैव यही उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता।" उससे पूछा गया कि मनुष्य का प्रकृत कर्तव्य क्या है? उन्होंने कहा, "शुभ-चरित्र बनो और शुभ कर्म करो" एक बार पाँच ब्राह्मणों ने आकर उनसे विनती की, "भगवान्, मेरे शास्त्रों में ईश्वर का यह स्वरूप वतलाया गया है और उसकी प्राप्ति के लिए यह मार्ग दर्शाया गया है।" दूसरे ब्राह्मण ने कहा, "नहीं, यह सब मिथ्या है, क्योंकि मेरे शास्त्र में इसके विपरीत लिखा है और ईश्वर-प्राप्ति का अन्य मार्ग वतलाया गया है" इस प्रकार दूसरों ने भी शास्त्रों की दुहाई देकर ईश्वर के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में अपने-अपने मत प्रकट किये। बुद्धदेव यह विवाद शान्तिपूर्वक सुनकर उनसे क्रमश: पूछने लगे, 'क्या किसी के शास्त्र में यह भी कथन है कि ईश्वर कभी क्रोध करता है? किसी की हानि करता है या अशुद्ध है?" उन सबने कहा, "नहीं भगवान्, हमारे सभी शास्त्र यही कहते हैं कि ईश्वर शुद्ध, विकाररहित और कल्याणकर है।" तब भगवान् बुद्ध बोले, "मित्रो, तब तुम पहले शुद्ध और सदाचारी बनने की चेष्टा क्यों नहीं करते, जिससे तुम्हें ईश्वर का ज्ञान हो सके।"

मैं बौद्ध दर्शन से पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। मुझे अपने लिए दार्शनिक विचार की यथेष्ट आवश्यकता प्रतीत होती है। मेरा बुद्ध के सिद्धांतों से मतभेद है, किन्तु यह मेरे उस महान् आत्मा के चरित्र एवं भाव-सौन्दर्य के दर्शन में बाधक नहीं है, बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं। ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं। ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे, वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर अन्तिम क्षण तक ये ही शब्द थे, "अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी। अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।" अपने सम्बन्ध में भगवान बुद्ध कहा करते थे, "बुद्ध शब्द का अर्थ है—आकाश के समान अनन्त ज्ञान सम्पन्न। मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गयी है। तुम भी यदि प्राणप्रण से प्रयत्न करो, तो उस स्थिति को प्राप्त कर सकते हो।" बुद्ध ने अपनी सब कामनाओं पर विजय पा ली थी। उन्हें स्वर्ग जाने की कोई लालसा न थी और न ऐश्वर्य की ही कोई कामना थी। अपने राज-पाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे, इस राजकुमार ने अपना सिन्धु-सा विशाल हृदय लेकर नर-नारी तथा जीव-जन्तुओं के कल्याण के हेतु, आर्यावर्त की वीथी-वीथी में भ्रमणकर भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया। जगत् में वह ही एक मात्र ऐसे हैं, जो यज्ञों में पशुबलि-निवारण के हेतु, किसी प्राणी के जीवन की रक्षा के लिए राजा से कहा, "यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हें स्वर्ग-प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य के होम से और किसी उच्च फल की प्राप्ति होगी। राजन्! उस पशु के पाश काटकर मेरी आहुति दे दो—शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।" राजा स्तब्ध हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध पूर्ण रूप से निष्काम थे। वे कर्मयोग के ज्वलन्त आदर्श स्वरूप थे और जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गये थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्मशक्ति द्वारा हम भी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान बुद्ध के उपदेश

१. हे भिक्षुओ! आत्म-दीप बनकर विहरो। तुम अपनी शरण जाओ, किसी दूसरे का सहारा मत ढूँढ़ो। केवल धर्म को अपना दीपक बनाओ, केवल धर्म की ही शरण में जाओ।

२. इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता। अवैर से ही शान्त होता है। यही सनातन शाश्वत धर्म है।

३. विजय वैर को उत्पन्न करता है। पराजित व्यक्ति दुःख की नींद सोता है। जो जय-पराजय का सर्वथा परित्याग कर देता है, वही शान्ति की नींद सो सकता है।

४. एक आत्मा (स्वयं) जीता हुआ अच्छा है, न कि अन्य समस्त प्रजा। एक आत्मा के दमन करने वाले, नित्य संयम का आचरण करने वाले पुरुष के न देवता, न गन्धर्व, न कामदेव, न ब्रह्मा ही उस जैसे प्राणी के विजय को पराजय में परिणत कर सकते हैं।

५. यदि मनुष्य पाप करे, तो उसे बार-बार न करे। पाप को स्वच्छन्दतापूर्वक न करे। पापों का संचय करना दुःखकारी होता है।

यदि मनुष्य पुण्य करे तो उसे बार-बार करे। पुण्य को स्वच्छन्दतापूर्वक करे। पुण्यों का संचय करना सुखकारी होता है।

६. मनुष्य पाप की अवहेलना न करे कि वह मेरे पास नहीं आएगा। जल की बूँद-बूँद गिरने से घड़ा भी भर जाता है। इसी तरह पुरुष भी थोड़ा-थोड़ा संचय करते हुए पाप से अपने को भर देता है।

७. यह हँसना कैसा और यह आनन्द कैसा—जब चारों तरफ नित्य आग लगी हुई है! अंधकार से घिरे हुए तुम लोग प्रकाश क्यों नहीं खोजते?

८. तृष्णा की नदियाँ स्नेहपूर्ण होती हैं। वे प्राणियों को प्रियकर प्रतीत होती हैं। जो मनुष्य इन नदियों में स्नान करते हैं और सुख की खोज करते हैं—वे बार-बार जन्म और बुढ़ापे के चक्कर में पड़ते हैं।

९. जो एक (पुरुष) इस नियम को लाँघ गया है, जो झूठ बोलने वाला है और जिसको परलोक का विचार नहीं है, वह पुरुष किसी पाप-कर्म को कर सकता है।

१०. जो मनुष्य अपने लिए, दूसरे के लिए अथवा धन के लिए झूठी गवाही देता है, उसे नीच जानो।

"ऐसे ही राहुल! 'जिसे जानबूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं, उसके लिए कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नहीं'—ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए राहुल! 'हँसी में भी नहीं झूठ बोलूँगा'—ऐसा अभ्यास करना चाहिए।

११. जो काम करना है, उसे आज ही कर, कौन जानता है कि कल मृत्यु को प्राप्त हो जायें, मृत्यु महासेना के साथ हमारा कोई समय निश्चित नहीं हुआ है।

१२. प्रिय में संग न करो, अप्रिय में भी आसक्ति मत करो। प्रिय का न देखना दुःखकारी होता है, और अप्रिय का देखना दुःखकारी होता है। जिनका कुछ भी प्रिय या अप्रिय नहीं है, उनके बंधन नहीं रहते।

१३. पदार्थों में आसक्ति करने से दुःख उत्पन्न होता है। आसक्ति से भय पैदा होता है। आसक्ति से मुक्त पुरुष को दुःख नहीं होता, भय कहाँ से?

पुस्तक समीक्षा

पुनर्जन्म : क्यों और कैसे ?

लेखक—स्वामी सत्प्रकाशानन्द

प्रकाशक—अद्वैत आश्रम, ५ डिही एण्टाली रोड

कलकत्ता-७०० ०१४

पृष्ठ संख्या—५३

मूल्य – ४ रुपये मात्र

पुनर्जन्म का सिद्धांत सदियों से बड़े-बड़े मनीषियों एवं विद्वानों के लिए विचार और विश्लेषण का सिद्धांत रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में इसकी युक्तिपूर्ण एवं समुचित विवेचना की परम आवश्यकता है। इस दिशा में कई चिन्तकों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। ऐसा ही एक प्रयास श्रीमत् स्वामी अभेदानन्दजी महाराज ने अपनी पुस्तक "Reincarnation" में किया है। लेकिन इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अभी तक नहीं हुआ है। साथ ही कोई अन्य पुस्तक भी उपलब्ध नहीं है जो हिन्दी-भाषियों को इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के बारे में कोई सही जानकारी दे सके।

अतएव, स्वामी सत्प्रकाशानन्दजी द्वारा लिखित "पुनर्जन्म : क्यों और कैसे ?" नामक पुस्तक निश्चय ही हिन्दीभाषियों के लिए एक अमूल्य उपहार स्वरूप है। यह पुस्तक मूल अंग्रेजी लेख "How is a man reborn" का प्रो० चमनलाल सप्रू द्वारा किया गया रूपान्तर है। प्रो० सप्रू सम्प्रति गवर्नमेंट कॉलेल फॉर वीमेन, नवाकदल, श्रीनगर के हिन्दी विभाग में अध्यापन का कार्य करते हैं।

इस पुस्तक में स्वामी सत्प्रकाशानन्दजी ने आधुनिक जीवविज्ञान की गवेपणाओं की पृष्ठभूमि में पुनर्जन्म के सिद्धांत का एक स्पष्ट तथा संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पुस्तक का अवलोकन करने पर यह बात शीघ्र समझ में आ जाती है कि गागर में सागर भरा हुआ है। पुनर्जन्म सम्बन्धी कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिसका उसमें विवेचन नहीं हुआ हो। पुनर्जन्म के सिद्धांत की युक्तिपूर्णता, एवं सत्यता, कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद, आनुवंशिकता का अर्थ, आधुनिक जीव-विज्ञान के अनुसार मनुष्य का जन्म, आधुनिक जीव शास्त्रियों द्वारा दिये गये मानव-उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न विचार एवं इन विचारों का औचित्य-अनौचित्य, पुनर्जन्म की भित्ति-आत्मा की अमरता आदि विषयों का क्रमबद्ध, युक्ति-संगत एवं प्रामाणिक विवेचन किया गया है।

पुस्तक के उपसंहार में लेखक ने लिखा है "प्राणी-शास्त्र के अनुसार व्यक्ति की उत्पत्ति और उसके विकास के लिए आनुवंशिकता एवं परिवेश दो मुख्य बातें हैं। ...मानव की उत्पत्ति एवं उसके विकास के इस स्रोत को मान लेने का अर्थ जड़ को मौलिक सत्ता के रूप में समर्थन देना है। इसका अर्थ यह है कि मानव की अध्यात्मिकसत्ता की तथा उसके मन की उत्पत्ति स्थूल जड़ से होती है। पर यह बात मान लेने योग्य नहीं है। भौतिक प्रक्रियाओं से भौतिक प्रकाश उत्पन्न हो सकता है किन्तु उससे आत्म चैतन्य की वह ज्योति, जिसका लक्षण आत्मज्ञान है, जो चेतन को जड़ से पृथक करती है, उत्पन्न नहीं होती। मानव की आध्यात्मिक सत्ता वास्तव में न जन्म लेती है, न मरती है बल्कि प्रारब्ध कर्म के अनुसार कुछ समय के लिए देहान्तर ग्रहण करती है।" पुस्तक सब के पढ़ने योग्य है। अनुवाद की भाषा सरल–सुबोध है। छपाई सुन्दर, स्पष्ट एवं गेटअप मोहक है।

—रामेश्वर यादव

Faith, faith, faith in ourselves, faith, faith in God—this is the secret of greatness.

—Swami Vivekananda
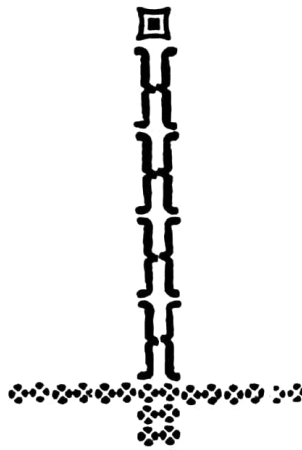
Infinite patience, infinite purity, and infinite perseverance are the secret of success in a good cause.

—**Swami Vivekananda**
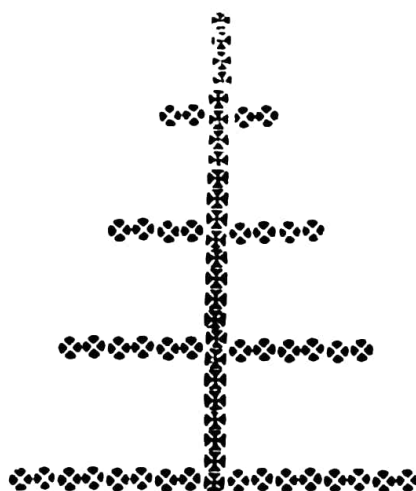
वैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
वैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह स्पेशल
पटना-८००००१
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
वैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
वैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१
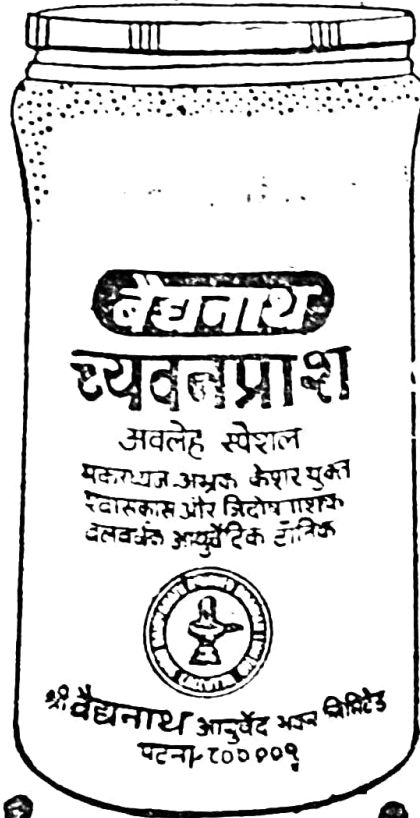
विवेक वाणी

मेरा मूलमन्त्र है—व्यक्तित्व का विकास। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा देकर उपयुक्त बनाने के सिवा मेरी और कोई उच्चाकांक्षा नहीं है। मेरा ज्ञान अत्यन्त सीमित है—उस सीमित ज्ञान को न दबाकर मैं शिक्षा देता रहता हूँ। जिस विषय को मैं नहीं जानता हूँ, उस बारे में मैं यह स्पष्ट कर देता हूँ कि उक्त विषय में मेरा कोई ज्ञान नहीं है। थियासाफिस्ट, ईसाई, मुसलमान अथवा अन्य किसी व्यक्ति से लोगों को कुछ भी सहायता मिल रही है सुनने से मुझे जो आनन्द मिलता है, उसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता। मैं तो एक संन्यासी हूँ—अतः इस जगत् में न तो मैं किसी का गुरु हूँ और न स्वामी, मैं तो सबका दास हूँ।.... यदि लोग मुझसे प्रीति करना चाहें तो प्रीति करें और यदि वे मुझे घृणा की दृष्टि से देखना चाहें तो देख सकते हैं, यह उनकी खुशी है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपना उद्धार स्वयं करना होगा—उसका कार्य उसी को करना होगा; मैंने ये समझा था कि आहार के बिना इस शरीर का नाश हो जायगा, परन्तु उससे हानि ही क्या है? मैं तो भिखारी हूँ। मैं दरिद्रता को आदर-पूर्वक अपनाता हूँ। जब कभी मुझे भोजन के बिना उपवासी रहना पड़ता है तब आनन्दित ही होता हूँ। मैं किसी का सहायताप्रार्थी नहीं हूँ—उससे लाभ ही क्या है? सत्य अपना प्रचार आप ही करेगा, मेरी सहायता के बिना वह विनष्ट नहीं हो सकता। "सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व"—सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समदृष्टि रखकर युद्ध में प्रवृत्त हो। (गीता)

इस प्रकार की अनन्त प्रीति, सब अवस्थाओं में इस प्रकार का अविचलित साम्य भाव रहने पर तथा ईर्ष्याद्वेष से सर्वथा मुक्त होने से तब कहीं कार्य हो सकता है। एक मात्र इसी से कार्य हो सकता है, अन्य किसी प्रकार से नहीं।

—पत्रावली, पृ० सं०—३६२-६३

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित